Con. 3. 5.11.47
750

अंक 5
संख्या 11

शनिवार,
30 अगस्त,
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. मौलिक अधिकारों पर पूरक रिपोर्ट 1

भारतीय विधान-परिषद्

शनिवार, 30 अगस्त, सन् 1947 ई॰

माननीय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कान्स्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में दिन के दस बजे आरम्भ हुई।

मौलिक अधिकारों पर पूरक रिपोर्ट

***अध्यक्ष:** मौलिक अधिकार समिति की पूरक रिपोर्ट पर अब हमें विचार करना चाहिये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल** (बम्बई: जनरल): श्रीमान् जी, सभा को यह विदित ही है कि मेरे पत्र पर–जो मौलिक अधिकार समिति की रिपोर्ट पेश करने के विषय में था–ता॰ 23 अप्रैल सन् 1947 ई॰ को विचार किया गया था और अधिकांश मुख्य प्रस्ताव स्वीकार कर लिये गये थे। किसी सीमा तक रिपोर्ट अपूर्ण थी क्योंकि हमें अनेकों विषयों पर विचार करना पड़ा जो कि हमें फिर सुपुर्द किये गये थे, तथा कुछ उन प्रस्तावों पर भी विचार करना था जो कि हमारे पास सीधे आये थे। रिपोर्ट के दो भाग थे, एक वह जिसमें वे अधिकार थे जो न्यायालय में भेजे जाने योग्य थे और दूसरा वह जिसमें वे मौलिक अधिकार थे जो न्यायालय में भेजे जाने योग्य न थे वरन् न्यूनाधिक रूप में आदेशमूलक थे जो देश के शासन में लाभदायक सिद्ध होंगे। परामर्शदातृ समिति ने इन दोनों भागों पर विचार कर लिया और अपना कार्य समाप्त किया। इस रिपोर्ट में जिसे मैं सभा के सामने रख रहा हूं, न्यायालय में भेजे जाने योग्य प्रथम दो या तीन विषय हैं जो कि समाप्त नहीं किये गये थे और जो हमें वापस कर दिये गये थे। एक वाक्यखंड 16 के संबंध में है, जो इस प्रकार है:

> ''सरकारी कोष द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस स्कूल में दी जाने वाली किसी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने या उस स्कूल से संबद्ध अन्य स्थान में की जाने वाली किसी धार्मिक पूजा में उपस्थित होने के लिये विवश नहीं किया जायेगा।''

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

जिसका आशय यह है कि सरकारी स्कूलों तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य न हो। समिति ने इसे स्वीकार कर लिया है और सिफारिश करती है कि सभा इसे स्वीकार करे।

तत्पश्चात् वाक्य खंड 17 है जो धर्म-परिवर्तन के संबंध का है। वह इस प्रकार है:

''दबाव या अनुचित प्रभाव द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन करना कानून द्वारा प्रमाणित नहीं किया जायेगा।''

समिति इस परिणाम पर पहुंची कि जहां तक मौलिक अधिकारों का संबंध है यह साधारण वाक्यखंड पर्याप्त है। आगे विचार करने पर हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि यह वाक्यखंड किसी स्पष्ट सिद्धान्त की व्याख्या करता है जिसका इस विधान में समावेश करना अनावश्यक था और हमने यह उचित समझा कि इसे व्यवस्थापिका पर छोड़ दिया जाये।

इसके पश्चात् वाक्यखंड 18 (2) है जो इस प्रकार है:

''धर्म, जाति या भाषा में से किसी आधार पर आश्रित किसी अल्पसंख्यक को सरकारी शिक्षणालयों में दाखिल होने के विरुद्ध कोई भेद नहीं बर्ता जायेगा और न उनको किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी।''

एक और पैरा भी था जिसमें यह सिफारिश की गई थी कि उस वाक्यखंड के पिछले भाग को अर्थात् ''न उनको किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी'' निकाल दिया जाये क्योंकि यह वाक्यखंड (16) के अंतर्गत आ जाता है।

तत्पश्चात् हमने इस प्रश्न पर विचार किया कि इस वाक्यखंड की सीमा को इतना विस्तृत कर दिया जाये कि इसमें सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थायें भी आ जायें, पर कमेटी इस परिणाम पर पहुंची कि वर्तमान दशा में हमारा इस प्रकार की सिफारिश करना न्यायपूर्ण नहीं होगा।

मौलिक अधिकार उप-समिति ने अपनी रिपोर्ट में हमसे यह सिफारिश की कि संघ की राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी स्वीकार की जाये जो चाहे देवनागरी लिपि में

हो चाहे फारसी लिपि में, परन्तु इसके बाद इस विषय को स्थगित कर दिया गया, क्योंकि उस पर संघ-विधान समिति द्वारा विचार किया जा रहा था और चूंकि विधान-परिषद् में यह विषय विचारान्तर्गत है, हमने यह ठीक समझा कि इस विषय को न लिया जाये। इस कारण हमने इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा है और इस पर अलग विचार किया जायेगा। और भी अनेकों संशोधन पेश किये गये थे। हमने उनमें से प्रत्येक पर विचार किया है और हम इस परिणाम पर पहुंचे कि पेश किये गये इन सब संशोधनों से मौलिक अधिकारों को न लादा जाये।

रिपोर्ट का एक भाग और है जिसमें न्यायालय जाने वाले अधिकारों के साथ-साथ राज्य की नीति के कुछ ऐसे आदेश हैं जो यद्यपि किसी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किये जाने योग्य नहीं हैं, फिर भी देश की शासन व्यवस्था के लिये उनको मौलिक मानना चाहिये। जिन व्यवस्थाओं पर समिति ने विचार किया है वे परिशिष्ट (क) में शामिल हैं, जो रिपोर्ट के साथ लगा दी गयी है। रिपोर्ट के साथ जो परिशिष्ट घुमाया गया था वह भी आपके पास है। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि यह परिषद् परामर्शदातृ समिति द्वारा मौलिक अधिकारों के विषय पर पेश की गई पूरक रिपोर्ट पर विचार करे। यदि कोई सदस्य चाहता है तो वह कुछ कह सकता है।

***श्री आर०के० सिधवा** (मध्य प्रान्त तथा बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपको यह स्मरण होगा कि इस सभा ने अपने पहले और दूसरे अधिवेशन में एक स्मरणीय प्रस्ताव पास किया था जो लक्ष्य मूलक प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें दी हुई अनेकों अच्छी बातों में से एक सामाजिक तथा आर्थिक समानता के संबंध की है। इस प्रस्ताव को पेश करते समय विद्वान पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस सभा में एक स्मरणीय भाषण दिया था। उसके कुछ विचारों को सदस्यों के मन में फिर से ताजा करने के लिए मैं रखूंगा। और बातों के साथ साथ प्रस्ताव में दिया हुआ है कि:

> ''जिसमें समस्त भारतीय जनता के लिये सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय; स्थिति, अवसर तथा कानून की दृष्टि में समानता की गारंटी की जायेगी तथा उनको सुरक्षित रखा जायेगा।''

और उस प्रस्ताव को पेश करते हुये उन्होंने कहा था–

[श्री आर.के. सिधवा]

''मैं समाजवाद का समर्थक हूं और मैं आशा करता हूं कि भारत समाजवाद का समर्थक होगा, भारत समाजवादी राज्य की स्थापना करेगा और मैं यह भी विश्वास करता हूं कि समस्त संसार को इस ओर झुकना पड़ेगा।''

श्रीमान् जी, लक्ष्य के इस स्पष्ट कथन के पश्चात् जब न्यायालय में जाने योग्य अधिकार हमारे सामने आये तो मैं यह आशा कर रहा था कि हमारे विधान में सामाजिक तथा आर्थिक समानता का प्रमुख अंग होगा। न्यायालय में जाने योग्य अधिकारों में न पाकर मैंने उसे न्यायालय में न जाने योग्य अधिकारों में ढूंढा, पर वह खोज व्यर्थ ही रही। श्रीमान् जी, कहने को तो यह ठीक है कि हम गांवों से लेकर शहरों तक पूर्ण अधिकार देना चाहते हैं जिससे कि आर्थिक परिस्थिति को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाये कि साधारण व्यक्ति सुखी तथा सम्पन्न हो सके। लेकिन श्रीमान् जी, मैं यह कह दूं कि चाहे हम कितने ही प्रयत्न करें और ग्रामोद्धार, ग्राम-पंचायत, ग्रामोन्नति इत्यादि के समान किसी भी साधन को क्रियान्वित करें, जब तक आर्थिक परिस्थितियों पर सुनीतिपूर्ण विचार नहीं किया जायेगा इन साधनों से कोई लाभ नहीं और न इनमें सफलता होगी। श्रीमान् जी, आज क्या दशा है? मैं अपने अनुभव से आपको बता सकता हूं। मुझे अखिल भारतीय स्थानीय संस्थाओं के संघ का सभापति होने का गौरव है। इन स्थानीय संस्थाओं को अधिकार दे दिये गये हैं लेकिन उनके पास खर्च करने के लिये धन नहीं है। अत: वे बिल्कुल असहाय हैं। बिना धन के वे कभी कार्य नहीं कर सकतीं। जो अधिकार उनको दिये गये हैं वे किसी प्रकार भी उनके लिये लाभदायक नहीं हैं। ये हालतें हैं जिनमें आज स्थानीय संस्थायें हानि उठा रही हैं।

जब मैं संघ-अधिकार समिति की रिपोर्ट तथा उस दिन सभा में जो मद रखे गये थे उनको सुन रहा था उस समय हम केन्द्र को अधिक आर्थिक अधिकारों से शक्तिशाली बनाने की बात बढ़ा चढ़ा कर, कर रहे थे। परन्तु यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि प्रान्तों की आर्थिक दशा इतनी गिरी हुई है कि वे स्थानीय संस्थाओं को उतनी भी सहायता नहीं दे सकते जितनी आवश्यक है। स्थानीय संस्थायें धन के अभाव में हैं और जब वे प्रान्तीय सरकार के पास जाती हैं तो वह इस आधार पर सहायता करने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं कि केन्द्र उनको उतना धन नहीं देता जितना उस पर चाहिये। श्रीमान् जी, बिजली कर, मनोरंजन

कर, जुआ कर (बेटिंग टैक्स) स्थानीय संस्थाओं के हैं पर उनका प्रान्तीय सरकार द्वारा उपभोग होता चला आया है। विभिन्न सरकारों द्वारा जांच कराई गई थी और निश्चित रूप से यह तय किया गया था कि जब तक प्रान्तीय सरकार द्वारा धन से सहायता नहीं की जायेगी स्थानीय संस्थायें सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकेंगी।

श्रीमान् जी, स्थानीय संस्थायें भारत में हमारी आर्थिक परिस्थितियों का आधारभूत हैं और जब तक कि गांवों को अच्छी आर्थिक सहायता देने पर उचित विचार नहीं किया जाता तथा उनको यथेष्ठ धन नहीं दिया जाता तो मैं आपको विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि हम अपने साधारण नागरिक को सुखी तथा सम्पन्न नहीं बना सकेंगे। हम उनको अधिकार दे सकते हैं। हम सब उनको अधिकार देने के लिए चिंतित हैं परन्तु यदि आप उनको धन नहीं देंगे तो वे क्या करेंगे? वे किस प्रकार आगे बढ़ सकते हैं? मैंने यह आशा की थी कि न्यायालय में न जाने वाले इन अधिकारों में–जो कि शुद्ध हैं, मेरा कहने का आशय यह है कि वे शुद्ध साधन हैं क्योंकि वे न्यायालय में जाने वाले अधिकार नहीं हैं–सामाजिक अधिकारों की समानता का कुछ जिक्र होता। मैं यह सुझाव नहीं रखता हूं कि हमारी सार्वजनिक सरकारें दोनों केन्द्रीय तथा प्रान्तीय इन बातों में सावधानी नहीं रखती हैं। वे भी हमारे समान तथा हममें से अनेकों के समान व्यवस्था ठीक करने के लिये उत्सुक हैं। परन्तु उनको भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और मैं आपसे यह कह दूं कि जब तक आर्थिक परिस्थितियों में सुधार नहीं होता वे किसी दिशा में उन्नति नहीं कर सकेंगे, जिनसे हम वर्षों से यह कहते चले आ रहे हैं कि जब हमको स्वतंत्रता मिल जायेगी हम इस बात का ध्यान रखेंगे कि साधारण व्यक्ति वास्तव में सच्चे आनन्द का उपभोग करे। श्रीमान् जी, प्रस्ताव में यह कहा गया है कि सब नागरिकों को, मनुष्यों तथा स्त्रियों को जीवन-यापन के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है। ''जीवन-यापन के पर्याप्त साधन'' कहना तो बहुत भला है। परन्तु वह कहां से प्राप्त किया जाये? हमें उसके लिये व्यवस्था करनी है। हां, यह मैं स्वीकार करता हूं कि केवल यहां व्यवस्था बना देने से उद्देश्य की सिद्धी नहीं होगी। परन्तु यदि इस संबंध की वास्तव में कोई व्यवस्था होगी तो शासन प्रबन्ध को उसकी अवहेलना करना कठिन होगा।

श्रीमान् जी, इस देश में अर्थ विभाजन इतनी शोचनीय अवस्था में है कि जब तक हम उसे समानता के स्तर पर नहीं लायेंगे परिस्थितियों में सुधार नहीं होगा। मैं आपके सामने दो उदाहरण रखूंगा–दो सच्चे उदाहरण। एक उदाहरण यह है कि एक कुटुम्ब का मुखिया मरा तो वह अपने एकमात्र पुत्र के उपभोग के लिये

[श्री आर.के. सिधवा]

11 करोड़ रुपया छोड़ गया। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से अपने पिता की मृत्यु के एक वर्ष बाद वह भी चलता बना। समस्त धनराशि का कुटुम्ब के अनेकों सदस्यों में बंटवारा हुआ जिनके पास पहले ही करोड़ों रुपये थे। यदि इस ढंग का सुनीतिपूर्ण विभाजन होता तो यह धन राज्य को मिलना चाहिये था।

मैं एक और व्यक्ति के कुटुम्ब से परिचित हूं जिसके तीन बच्चे थे और जिसने 50 लाख रुपया छोड़ा। दो लड़कों ने तीन वर्ष में अपना भाग बर्बाद कर दिया पर तीसरा लड़का कंजूस था, उसने सट्टे द्वारा अथवा अन्य साधनों द्वारा अपने भाग को दो करोड़ कर लिया। यह किस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था है? श्रीमान् जी, इस देश में कुछ सौ या कुछ हजार व्यक्ति ऐसे हैं जो करोड़ों के फेर में हैं और करोड़ों ऐसे हैं जिनके पास खाने को दाने नहीं। यह हालत है। इसका हम कैसे सुधार कर सकते हैं जब तक कि यह आर्थिक असमानता जो कि इस देश के कुछ लोगों तक सीमित है दूर नहीं की जाती? मुझे पूरा विश्वास है कि साधारण जनता पर अनेकों प्रकार के करों का और भी अधिक भार डाले बिना ही यदि इस धन का उचित विभाजन कर दिया जाये तो राज्य के पास राष्ट्र निर्माण कार्य को सफलतापूर्वक चलाने के लिये पर्याप्त धन हो जायेगा। श्रीमान् जी, मैं जानता हूं कि सरकार में हमारे जनप्रिय सदस्य सचेष्ट हैं और वे इस विषय पर ध्यान दे रहे होंगे। मैं यह कभी नहीं कहता कि वे इसके प्रति असावधान हैं या उदासीन हैं। लेकिन मैं यह कहूंगा कि विधान में कहीं भी तो इस व्यवस्था को स्थान दिया जाये। न्यायालय में न जाने वाले तीन अधिकार विधान के पृष्ठों की शोभामात्र हैं और थोड़ा सा संतोष देने वाले हैं। मैं यह पसंद करूंगा कि वे विधान के अंग होते जिससे कि प्रत्येक नागरिक को यह कहने का गौरव होता ''अब समानता तथा सम्पत्ति के उपभोग करने का मेरा समय आ गया है अत: अब मैं सदैव निर्धन नहीं रहूंगा।'' यह मेरा विचार है। मैंने मौलिक अधिकार समिति में इस प्रस्ताव को पेश करने का प्रयत्न किया था और मुझसे यह कहा गया कि यह उपयुक्त स्थान नहीं है। अत: मैंने प्रतीक्षा की। अब उपयुक्त स्थान है और मैं चाहता हूं कि न्यायालय में न जाने वाले अधिकारों में इसकी व्यवस्था कर दी जाये।

जो कुछ मैं निवेदन करना चाहता हूं वह यह है कि यदि आप समाज संबंधी आर्थिक व्यवस्था की प्रणाली में सुधार करना चाहते हैं तो आपको अपने बड़े-बड़े उद्योगों का राष्ट्रीकरण करना होगा और यदि आप मजदूरों को उचित वेतन देना

चाहते हैं तथा प्रसूति संबंधी अन्य सुविधायें देना चाहते हैं–आप एक क्षण के लिये भी यह विचार न करें कि यह एक स्थिर तर्क है, परन्तु मैं शुद्ध हृदय से यह अनुभव करता हूं कि इस तर्क को स्वीकार कर लेना चाहिये। हम हड़तालें नहीं चाहते हैं। हम उनको पसन्द नहीं करते। परन्तु प्रत्येक प्रातःकाल आप जागते हैं और बाजार जाते हैं तो यदि आपने कल एक वस्तु के दस आने दिये थे तो आज आपको बारह या चौदह आने देने पड़ेंगे। इसका साधारण नौकरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो कि अपनी मासिक आमदनी पर पूर्णतया निर्भर रहते हैं? वह किस प्रकार अपना बजट बना सकते हैं? श्रीमान् जी, मैं यह निवेदन करता हूं कि समस्त आर्थिक ढांचे के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। हम हड़तालें नहीं चाहते हैं तथा हम अधिक उत्पादन चाहते हैं, फिर यदि मजदूर हड़तालें करते हैं तो हम सारा दोष उन पर ही न डालें। सत्य तो यह है कि वे अपना निर्वाह नहीं कर सकते हैं। मूल्य बहुत बढ़ गया है। यदि आप बाजार जायें तो क्या हालत है? उच्च वर्ग के लोग तथा धनी लोग अपने नौकरों को बाजार भेजते हैं, वे उस हालत से परिचित नहीं होते। परन्तु वह व्यक्ति जो अपनी कमाई हुई आमदनी पर निर्भर रहता है खुद बाजार जाता है और जब यह देखता है कि उसके पास खर्च करने के लिए डेढ़ रुपया है और उसे दो रुपये देने हैं तो वह निराश हो जाता है। हालतें खराब होती चली जा रही हैं और जनप्रिय सरकार को बावजूद इसके कि चाहे कैसी भी कठिनाइयां हों, इन बातों का सामना करना है। श्रीमान् जी, मैं जानता हूं कि इस सभा में मिश्रित वर्ग के लोग हैं, उच्चवर्गीय, धनी, निम्नवर्गीय तथा निर्धन और इस प्रकार के साधन का इस परिषद् में अपनाना हमारे लिये सम्भव नहीं है। परन्तु जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्ताव में ठीक-ठीक कहा कि अब वह समय आ गया है और चाहे कैसी भी स्थिति हो हमें समय के अनुसार चलना पड़ेगा और यह करना पड़ेगा कि सम्पत्ति का समान विभाजन हो।

श्रीमान् जी, मैं इस बात पर जोर देता हूं कि आप चाहे कुछ भी उद्देश्य रखें, आप चाहे कोई भी व्यवस्था बनायें जब तक आप ग्राम पंचायत नहीं बनाते तथा स्वास्थ्य संबंधी समितियां नहीं बनाते जिनके पास पर्याप्त धन हो तथा खर्च प्रांत के अधिकार में न हो तब तक आप इस देश की सामाजिक व्यवस्था को नहीं सुधार सकते। इस दुःख का यही खास कारण है और इस पर शीघ्र ध्यान देने की आवश्यकता है।

***अध्यक्षः** क्या माननीय सदस्य अब विषय को लेंगे? (*हंसी*)

***श्री आर०के० सिधवाः** अध्यक्ष महोदय, यदि ये बातें विधान में होने योग्य नहीं हैं तो में नहीं समझता कि और क्या बातें हैं? जब कि माननीय अध्यक्ष

[श्री आर.के. सिधवा]

ने मुझसे विषय पर आने के लिए कहा तो यहां मेरे मित्रों ने तालियां बजाईं। मुझे इसकी आशा थी और मैंने कह दिया था कि इस सभा के समान मिश्रित वर्ग की सभा में इस प्रकार के प्रस्ताव का पास होना सम्भव नहीं है। यदि सभा की यही इच्छा है कि विधान में इस प्रकार की व्यवस्था न रखी जाये तो उनको स्वयं प्रसन्न हो लेने दीजिये। मैं अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं। मेरा यह कटु अनुभव है कि यदि आप इस देश को सुखी बनाना चाहते हैं तो विधान में इस प्रकार की व्यवस्था रखनी चाहिये। मैं अपने विचार रखूंगा, सभा की चाहे कुछ भी राय हो। इसके अतिरिक्त यह केवल मेरे ही विचार नहीं हैं। इस देश की अनेकों प्रमुख संस्थाओं के यही विचार हैं जिनके अध्यक्ष होने का मुझे गौरव है।

श्रीमान् जी, मैं इसलिए निवेदन करता हूं। यद्यपि मैं जानता हूं कि यह तर्क उपस्थित किया जायेगा कि ये कुछ सामाजिक व्यवस्थाएं हैं जिनको रूस के विधान से लिया गया है। मैं जानता हूं कि रूस के विधान में कुछ आधुनिक बातें हैं जो कि भारत में लागू नहीं की जा सकतीं, परन्तु ऐसी भी बहुत सी अच्छी बातें हैं जो भारत के लिये बहुत ही उपयुक्त हैं और यह वास्तव में हमारे हित की बात होगी यदि हम रूस के विधान की कुछ अच्छी बातों का अनुसरण करें। मैं उस अच्छी विधि को बताना चाहता हूं जिससे अच्छा फल प्राप्त होगा। मैं उनको अपना लेने के पक्ष में हूंगा। इन शब्दों के साथ-साथ श्रीमान् जी, कमेटी को इस प्रस्ताव के रखने की बधाई देते हुये मैं यह चाहता था कि इस प्रकार का वाक्यखंड रखा जाता। यह नहीं रखा गया है, पर मैं आशा करता हूं कि इस देश के शासन में तथा उसकी शासन व्यवस्था में इस दृष्टिकोण पर विशेष ध्यान रखा जायेगा कि जब तक आप अपनी आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं करते तथा उनमें सुधार नहीं करते तब तक आप इस देश में किसी प्रकार का सुख तथा सम्पन्नता नहीं ला सकते।

***श्री बी॰ दास** (उड़ीसा: जनरल): श्रीमान् जी, जब कि मौलिक अधिकारों के प्रथम मसविदे पर इस सभा में वाद-विवाद हुआ था मैंने नागरिकता के संबंध में वाक्यखंड (3) पर गंभीर शंकायें प्रकट की थीं। बहुत वाद-विवाद के पश्चात् वह फिर मसविदा बनाने के लिए भेज दिया गया था। तत्संबंधी समिति ने उसका फिर से मसविदा तैयार किया और माननीय सरदार पटेल द्वारा सभा के समक्ष स्वीकृति के लिए रखा गया। उस समय जब कि तत्संबंधी समिति की रिपोर्ट पेश की गई थी मुझे शंकायें थीं कि यह नया मसविदा भारत की जनता की

आवश्यकताओं के अनुकूल होगा या नहीं। आज मैं उस वाक्यखंड को स्वीकार करता हूं। वाक्यखंड (3) के मूल रूप में कुछ थोड़े से परिवर्तन कर दिये गये हैं। श्रीमान् जी, मैं माननीय सरदार द्वारा यह आश्वासन प्राप्त करना चाहूंगा कि क्या सरकार संघ कानूनों में कुछ परिवर्तन करना चाहती है या नहीं जैसा कि वाक्यखंड (3) की व्यवस्था में दिया गया है। गत अप्रैल में जब कि हमने मौलिक अधिकारों पर वाद-विवाद किया था उस समय से कई घटनायें हो चुकी हैं। भारत का विभाजन हो चुका है और भारतीय नागरिक जो कि भारत के दोनों भागों में पैदा हुए वे अब या तो पाकिस्तान में या हिन्दुस्तान में नागरिकता का अधिकार पा सकते हैं। ऐसे कुटुम्ब भी हो सकते हैं जिनमें से एक भाई पाकिस्तान में हो उसे पाकिस्तान के नागरिक अधिकार मिलें और दूसरे हिन्दुस्तान के नागरिक हों। श्रीमान् जी, विशेष कर मैं ऐसे सरकारी कर्मचारी तथा गैर सरकारी कर्मचारियों से परिचित हूं जो अपनी सेवायें अपनी सम्पूर्ण शक्तियां पाकिस्तान की सेवा में अर्पण करने के लिये चले गये हैं। अत: यह स्वाभाविक है कि सरकार इस प्रकार का कानून निर्माण करे कि प्रत्येक व्यक्ति को यह घोषित कर देना चाहिये कि वह पाकिस्तान का नागरिक है या हिंदुस्तान का। कोई व्यक्ति यह नहीं चाहेगा कि भारत के कुशाग्रबुद्धि सम्पन्न जब पाकिस्तान जायें और फिर जब वे भारत वापस आयें, तो क्या उनको एक भारतवासी के समान वापस आने दिया जायेगा या उनको पाकिस्तान के नागरिक माना जायेगा, क्योंकि देश के विभाजन के पश्चात् उन्होंने पाकिस्तान में नौकरी की?

श्रीमान् जी, मौलिक अधिकारों के अन्य परिवर्तनों के संबंध में मैं वाक्यखंड 16 पर की गई सिफारिशों को स्वीकार करता हूं तथा मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि वाक्यखंड (17) और वाक्यखंड (18) के उपवाक्यखंड (2) को हटा दिया जाये। श्रीमान् जी, जब कि हम भारत की जनता के मौलिक अधिकारों पर बातचीत कर रहे थे, मैं यह कहना चाहूंगा कि कुछ नागरिकों की, विशेषकर जो कि विधान-परिषद् की नौकरी में हैं, कल अनावश्यक तथा शोचनीय आलोचना की गई थी। इस सभा में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है केवल विधान-परिषद् का कार्यालय है जो उन दोषों का उत्तर देगा जो सभा में लगाये गये थे। मेरे विचार से सभा में इस प्रकार का भाषण देना गलत था। यदि किसी सदस्य को कोई शिकायत थी तो उसे विधान-परिषद् के कार्यालय की योग्यता तथा अयोग्यता की जांच करने के लिए स्टाफ तथा फाइनेंस कमेटी के पास जाना चाहिये था। व्यक्तिगत रूप से मैं जानता हूं कि उन्होंने अपने गरिमामय उत्तरदायित्व को योग्यता, चतुराई तथा स्वतंत्र भारत की भक्ति सहित निभाया है। यद्यपि वे प्राचीन नौकरशाही के अंग थे फिर भी उन्होंने इतने ऊंचे परिमाण पर कार्य किया जितनी उनसे आशा

[श्री बी. दास]

थी और उन्होंने उतनी ही निष्ठा और भक्तिपूर्वक भारत की सेवा की जितनी कि हममें से किसी ने की है। अब तक उनकी सेवा तथा कार्यों के लिए मैं कृतज्ञता पूर्वक उनकी प्रशंसा करता हूं।

श्रीमान् जी, इसके बाद मैं रिपोर्ट के उस भाग पर आऊंगा जो शासन संबंधी मौलिक सिद्धांतों से संबंध रखती है। मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने कुछ बातें रखी हैं और मैं उनसे सहमत हूं तथा मुझे खेद है कि इन पवित्र सिफारिशों के लिये स्थायी विधान में कोई स्थान नहीं है। मैं शासन संबंधी मौलिक सिद्धांतों को सरकार का धर्म—सरकार का कर्तव्य-पथ समझता हूं। परन्तु हम विधान एक्ट में यह नहीं रखते कि सरकार को क्या करना चाहिये और सरकार का नागरिकों तथा जनता के प्रति क्या उत्तरदायित्व है। हम कहते हैं कि सरकार यह करे और यह आशा की जाती है कि हम विधान-परिषद् के सदस्यों को अपने घरों में बच्चों के समान समझा जाये और सरकार से कुछ प्राप्त करने के लिये हम चीखें तथा आन्दोलन करें और तब सरकार, चाहे वह वर्तमान सरकार हो या उत्तराधिकारी सरकार, भारत की जनता की परिस्थितियों को सुधारने के लिए कानून का निर्माण करे। मैं कानून के विद्वानों तथा विशेषज्ञों की इस राय से संतुष्ट हूं जिसके द्वारा वे सरकार के कर्तव्यों की व्याख्या न्यायालय में जाने वाले तथा न जाने वाले के रूप में करते हैं। उन्होंने कहा है कि हम भारत के संघ-विधान में इस बात को शामिल नहीं कर सकते हैं कि सरकार को जनता के लिये क्या करना है। मैं समझता हूं कि सरकार का भुखमरी हटाने, प्रत्येक नागरिक को सामाजिक न्याय प्रदान करने तथा सामाजिक संरक्षण देने का प्रमुख कर्तव्य है। श्रीमान् जी, मुझे संतोष नहीं हुआ है यद्यपि रूस के विधान या आयरिश विधान के भागों के किसी ऐसे मिश्रित रूप को इन बारह पैरों में शामिल कर दिया गया है कि उनसे हमें कुछ आशा होती है। परन्तु करोड़ों देशवासियों को ऐसी कोई आशा नहीं होती कि दो माह के पश्चात् जो संघ-विधान स्वीकृत होगा वह उनको भुखमरी से मुक्त करेगा, उन्हें सामाजिक न्याय प्रदान करेगा, उनको जीवनयापन के निम्नतम परिमाण तथा स्वास्थ्य के निम्नतम परिमाण तक ले जायेगा। विधान के सिद्धांतों में जो हमने अब तक स्वीकार किये हैं, चाहे वह प्रांतीय विधान हों, संघीय-विधान हों अथवा संघीय अधिकार हों, मुझे ऐसी कोई बात नहीं मिली जिसने सरकार या राज्य को बाध्य किया हो कि वह सर्वसाधारण की भलाई तथा जनता के हित के लिये अपने पालनीय कर्तव्यों का पालन करे। अतः यह अच्छा है कि इन पवित्र वाक्यखंडों को परिशिष्ट में रखा जाये न कि खास विधान एक्ट में। भारतीय जनता के लिए यह कोई संतोष की बात नहीं है कि वे विधान-परिषद् का निर्वाचन करें जो

संघ-सरकार का निर्वाचन करे। सरकार का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह जनता पर उचित शासन करे उसकी सामाजिक भलाई तथा सामान्य हित की देखभाल करे। कल हमने संघ विधान का मसविदा तैयार करने के लिए मसविदा लेखकों की एक संस्था नियुक्त की है। मैं समझता हूं कि इस सभा के कानूनी विशेषज्ञों के लिए अब भी देर नहीं है कि वे उन उपायों तथा विधियों का आश्रय लें जिनके द्वारा वे सरकार को भारतीय जनता की भलाई तथा हित संबंधी कार्य करने के लिए बाध्य कर सकते हैं। न्यायालय जाने वाले या न जाने वाले अधिकारों को बहुत बढ़ा दिया गया है। मैं नहीं समझ पाता हूं आयरलैंड के विधान के अंतर्गत इन सुन्दर सिद्धांतों का किस प्रकार समावेश हुआ। यदि आयरिश विधान ऐसा कर सकता है तो भारतीय विधान को भी ऐसा करना चाहिये। परन्तु श्रीमान् जी, हमारे सामने तो वकीलों की एक दृढ़ दीवार खड़ी हुई है। कानून के वे विशेषज्ञ हैं और कहते हैं कि ये न्यायालय जाने वाले अधिकार हैं और ये न्यायालय न जाने वाले। इसका फल यह है कि इस सभा की स्थिति बच्चों के समान है, और बच्चों के समान ही यह कार्य करती है। वे कहते हैं कि सरकार यद्यपि जनतंत्रात्मक है, परन्तु उसे गत नौकरशाही की परम्परा तथा उसके पूर्ववर्ती दृष्टान्तों को मानना चाहिये। यदि वह ऐसा करती है तो वह जनता की सामाजिक परिस्थितियों में कोई सुधार नहीं कर सकती है।

यह बड़ा भय प्रद है। हम अपना स्वतंत्र श्रेष्ठ विधान बना रहे हैं। संभव है कि बीसवीं शताब्दी में हमारा अन्तिम विधान बने। कोई व्यक्ति यह आशा कर सकता है कि हमने अन्य देशों का ज्ञान, त्याग तथा अनुभव से लाभ उठाया होगा। मैं यह नहीं चाहता कि यह विधान एक या दो वर्षों के लिए ही बने। मन्द-मन्द ध्वनि हो रही है, परिवर्तन काल के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। और यदि हम फ्रांस की विधान-परिषद् का अनुकरण करेंगे तो हम बहुत अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। फ्रांस की जनता ने अपने श्रेष्ठ विधान का मसविदा बनाने के लिए क्रम से तीन विधान-परिषदों को चुना और क्रमानुसार तीन विधान-परिषदें हुईं। अंतिम विधान के अंतर्गत भी फ्रांस की सरकार अभी तक स्थायी नहीं हुई। हमारी सरकार की स्थायी होने की आशा है और वह आज भी स्थायी है। परन्तु कोई भविष्यवक्ता नहीं हो सकता तथा यह नहीं कह सकता कि वह एक या दो वर्ष से अधिक स्थायी रहेगी। और यदि मैं गांधीवादी होते हुए इस मसविदे से संतुष्ट नहीं हूं तो मैं कैसे आशा कर सकता हूं कि समाजवादी, साम्यवादी या अन्य इससे संतुष्ट होंगे? हम और अधिक मान्य मसविदा बनायें। हम वह मसविदा बनायें जो भारत की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हो। हम अपने विधान के मसविदे द्वारा

[श्री बी. दास]

संसार को यह बता दें कि भारत की सभ्यता तथा संस्कृति लाखों वर्ष पुरानी है। हमको वह प्रजातंत्रात्मक विधान बनाना चाहिये जिसके द्वारा राज्य प्रजा की सेवा करे और प्रजा राज्य की। हमारे विधान पर भारत की सभ्यता तथा संस्कृति की छाप हो।

***डा० पी०एस० देशमुख** (मध्य प्रांत तथा बरार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, स्वयं प्रस्ताव पर बोलने से पूर्व मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि चूंकि यह अधिवेशन का अंतिम दिवस है, संभव है कि हम अपने समक्ष आये हुए प्रस्ताव पर समस्त दिन लगा दें।

श्रीमान् जी, सभा को विदित है कि हमने अनेकों बातें अधूरी छोड़ दी हैं। अनेकों रिपोर्टें हमारे समक्ष उपस्थित की गयीं और हमने उनके केवल कुछ भागों पर ही विचार किया। अनेकों धारायें तथा वाक्यखंड, उदाहरणार्थ संघ-विधान समिति संबंधी इत्यादि, आगे विचार करने के लिए छोड़ दिये गये। मैं निवेदन करता हूं कि वही हाल इस रिपोर्ट का न हो। मेरी सम्मति से यह रिपोर्ट सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें विधान का वह भाग है जिसके लिए भारत की असंख्य जनता आशा लगाये बैठी है कि हमारे नेताओं द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं की पूर्ति होगी। वे यह देख रहे हैं कि हम उनकी स्थिति को उन्नत करने के लिये तथा जनसाधारण की जीवन शैली को उच्च बनाने के लिये दिए हुए अपने वचनों पर कितने दृढ़ हैं। इस विचार से श्रीमान् जी, मैं निवेदन करता हूं कि विधान के इस विशेष भाग को अन्य भागों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाये और सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अवसर दिया जाये। मैं आगे और निवेदन करूंगा कि जो आलोचना मैंने तथा मेरे मित्रों ने की है, यदि इस योजना के प्रवर्तकों पर उसका कोई प्रभाव पड़ा हो तो इस अधिवेशन में इन सिफारिशों पर कोई विचार न किया जाये। यह जब हो जायेगा तभी हम जनता के पास जाकर यह कह सकेंगे कि हम उनके हितों की अस्थायी नहीं वरन् स्थायी रूप से रक्षा कर सकेंगे।

वर्तमान रिपोर्ट पर मेरी प्रथम आलोचना यह है कि अन्य रिपोर्टों के समान यह भी अलौकिक असावधानी से तैयार की गई है। रिपोर्ट के निर्माता मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं कुछ कटु शब्दों का प्रयोग करूं। मेरी समझ से समिति के सदस्यों के विचारों का ठीक प्रतिबिम्ब उस पुस्तक में दिये गये एक वाक्य से विदित

होता है जो हमको दफ्तर द्वारा दी गई है। मैं उस वाक्य को पढ़ूंगा: ''व्यवस्थाओं का समावेश करने के लिये उनको चुनने में बड़ी कठिनाइयों का अनुभव हुआ।,'' ठीक। वह भी भारतीय विधान के मौलिक अधिकारों के मसविदे में क्योंकि, ''क्योंकि ऐसा कोई एकमात्र परिमाण नहीं है कि मौलिक अधिकारों के निर्माण का क्या आधार हो और वर्गीकरण का आधार भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न है''। यह स्पष्ट है कि यही समिति का मुख्य आधार रहा है। उन्होंने संसार के विधानों पर अनेकों पुस्तकों को, एक धारा यहां से लेने तथा दूसरा मद वहां से लेने के लिए जिससे कि वह भारतीय विधान के उपयुक्त हो सके और उनके आदर्शों के अनुरूप बन सके, घोंटा है। मैं आपसे तथा सभा से निवेदन करता हूं कि श्रीमान् जी, मौलिक अधिकारों पर विचार करते समय यह ढंग ठीक नहीं था। आयरलैंड में ऐसी क्या बात है कि हम उसके मौलिक अधिकारों को ज्यों का त्यों अपनायें? जो उनके लिए लाभदायक हो वह हमारे लिये विचार करने योग्य भी नहीं हो सका है। आयरलैंड की जनसंख्या केवल 29 लाख है जो कि कम नहीं तो उतनी ही है जितनी कि बड़ौदा रियासत की। तो इस विशेष विधान में ऐसी क्या विशिष्टता है कि उसको अनुकरणीय समझा गया है? मैंने वैधानिक इतिहास अथवा वैधानिक कानूनों पर किसी महत्वपूर्ण पुस्तक को नहीं देखा है जिसमें आयरिश विधान की कोई विशेष प्रशंसा की गई हो और मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि उसमें ऐसा क्या है जिसके कारण वह पूर्णरूपेण ग्रहण करने योग्य समझा जाता है। मेरी सम्मति से तो कमेटी ने इस सम्पूर्ण विषय पर बिल्कुल गलत तरीके से विचार किया। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे विधान निर्माताओं ने वर्तमान विधानों का अध्ययन किया और उनमें से उसको चुना जो सम्भवतया समाजवादियों तथा साम्यवादियों को शांत कर सके। मेरे विचार से जो कुछ हमारे सामने रखा गया है उसका यही संक्षिप्त साररूप है और संक्षेप में यही उसकी उचित व्याख्या है। किसी सूरत में उन्होंने दूरदर्शिता पूर्वक विचार करना नहीं चाहा लेकिन फिर भी वे विधान के सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं को अछूता नहीं छोड़ सके। इस प्रकार बेमन से उन्होंने उस पर विचार किया। अत: बात यह है कि हमारे सामने वह वस्तु है कि जिसको जनता का एक बड़ा भाग चाहे यहां हो चाहे बाहर स्वीकार नहीं कर सकता। श्रीमान् जी, हम यह आशा करते थे कि भविष्य में भारतीय समाज की निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार व्यवस्था की जायेगी। वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनका यहां समावेश किया गया है: यही कि लोगों के जीवन-यापन के साधन न्यायालय न जाने वाले अधिकारों में हैं, पुरुष तथा स्त्रियों का वेतन समान हो, जवानी तथा

[डा. पी.एस. देशमुख]

बचपन की रक्षा की जाये। ये सब बातें तथा प्रत्येक मद जो यहां रखा गया है साधारण ज्ञान के विषय हैं और कोई भी आधुनिक सरकार जो कुछ इसमें दिया गया है उसे न अपनाने में लज्जित होगी। यह वह अनियंत्रित न्यूनतम है जिसे प्रत्येक आधुनिक विधान तथा सरकार को स्वीकार करना चाहिये। हम न्यूनतम की खोखली स्वीकृति नहीं चाहते हैं। हमको अधिकतम की हट भी नहीं पकड़नी चाहिये और मैं समझौते के लिये उद्यत हूं लेकिन हम केवल सामान्य वार्ता तथा विशुद्ध कामनाओं पर निर्भर रहना नहीं चाहते हैं, क्योंकि यह वह वस्तु नहीं है जिसे प्राप्त करने के लिये हम यहां आये हों। कम से कम सन् 1942 से कांग्रेस का ढंग बिल्कुल ही बदल गया है। ये परिवर्तन इस कारण हुये कि एक भीषण प्रतिज्ञा की गई थी कि स्वतंत्र भारत की सरकार भारत के मजदूरों तथा किसानों की होगी और किसी की नहीं। इसी के कारण इतनी देहाती जनता, इतने देहाती युवक सन् 1942 की क्रान्ति में स्वयं बलिदान होने के लिये प्रेरित हुये। यदि आप अंकों का विश्लेषण करें तो श्रीमान् जी, आप यह जानकर आश्चर्यचकित हो जायेंगे कि रूढ़िवादियों तथा तब तक के देशभक्तों में से किसी ने भी त्याग नहीं किया। वह केवल पिछड़ी हुई देहाती जाति की अशिक्षित जनता थी जिसने स्वयं त्याग किया। नगर के बहुत कम लोग, जो कि उच्च तथा प्रसिद्ध कुटुम्ब के थे, इनका साथ देने को तैयार हुये। ऐसा होने से यह हमारा कर्तव्य है कि हम उन प्रतिज्ञाओं पर ध्यान दें जो हमने की थीं और रिपोर्ट पर विचार करने में हमें उस आदर्श को दृष्टि में रखना चाहिये था न कि बेमन से सिफारिशें रखने का प्रयत्न करना चाहिये था जिससे कि समाजवादियों को हम यह कह सकें कि हम भी एक प्रकार के समाजवादी हैं और साम्यवादियों को यह कह सकें कि हम उनके भी कुछ सिद्धान्तों का आदर करते हैं। श्रीमान् जी, मेरे एक मित्र ने कहा कि इन सिफारिशों में रूस तथा आयरलैंड के विधानों का मिश्रण है। मैं अपने माननीय मित्र को सूचित करूंगा कि उनको बड़ा भारी भ्रम हुआ है। इन सिफारिशों में रूस के विधान की कोई बात नहीं है। वे आदेशमूलक समझे जाते हैं। इन अनेकों मदों के रखने के अतिरिक्त हमारे विधान निर्माता हमें निश्चित कार्यक्रम बतायें जिसको प्रभावान्वित करने के लिये वे दृढ़ प्रतिज्ञ हैं और जिसके लिये कि समस्त भारत आकांक्षित है। इन सब बातों के अतिरिक्त अपने विधान में किसी कार्य साधकों के उपायों को रखे बिना कि कब तथा कैसे उनको प्राप्त किया जायेगा हम केवल सुदूर भविष्य में अस्पष्ट आशा का संचार कर रहे हैं। श्रीमान् जी, मैं निवेदन करता हूं कि यह अच्छा होगा यदि रिपोर्ट के निर्माता कृपा कर इस अधिवेशन तथा अगले

अधिवेशन के अन्तरवर्ती काल का उपयोग करें और इस सभा में रिपोर्ट पर जो कुछ आलोचना हो सकती है उसके आधार पर अपनी रिपोर्ट पर पुनः विचार करें। उस समय हम कुछ इससे अधिक अच्छी वस्तु प्राप्त कर सकेंगे जो कि आज हमारे सामने है यदि सारी चीज को मसविदा बनाने वाली समिति के पास नहीं भेजना है चाहे रिपोर्ट पर यहां पूर्ण वाद-विवाद हुआ हो अथवा नहीं। यदि ऐसा होता है तो हम मसविदे पर विचार करेंगे। लेकिन यदि यह रिपोर्ट के रूप में हमारे विचार के लिये फिर आती है तो हम आशा करते हैं कि उसका कुछ और ही रूप होगा।

वस्तुतः श्रीमान् जी, इनकी मौलिक अधिकारों के रूप में व्याख्या की गई है और श्रीमान् जी, मेरी सम्मति में मौलिक अधिकारों से मुख्य आशय जनसाधारण के सुख स्वतंत्रता तथा जीवन की रक्षा करने से है। मौलिक सिद्धान्तों का विचार वास्तव में शासक द्वारा अथवा लोगों की किसी संस्था द्वारा जो कि सरकार में प्रवेश कर सकती है, अत्याचार किये जाने के विरुद्ध अधिकार-पत्र-(मेगनाचार्य्या) के सिद्धान्तों के सदृश कोई वस्तु है। मेरा विचार यह है कि अपने विधान बनाने में इस प्रकार के मौलिक अधिकारों के रखने की आवश्यकता न थी। समस्त सिद्धान्तों का, जिनका समावेश करना हमने आवश्यक समझा और विशेषकर मौलिक अधिकारों के इस भाग का पालन करना जो कि सिफारिश के रूप में है, किसी राज्य का कर्तव्य नहीं है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि या तो इनको साधारण व्यवस्थाओं के समान विधान के अंतर्गत रखा जाये या इनको बिल्कुल ही बदल दिया जाये। वे कौन सी कठिनाइयां हैं जिनसे हम भारतवासी दुखी हैं? हमारी कठिनाइयां तथा रुकावटें भिन्न हैं। सर्वप्रथम हमारे लोगों की निर्धनता है, तत्पश्चात् अज्ञानता तथा निरक्षरता है इसके बाद भोजन की कमी, पोषक तत्व की कमी, सदाचार की कमी, अमानवी लोभ तथा उसके परिणामस्वरूप शोषण, निर्दयता के साथ लाभ तथा उसके परिणामस्वरूप नैतिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और अंतिम पर प्रमुख आर्थिक पतन है। प्रश्न यह है कि यह मौलिक अधिकार इस पतन से कहां तक रक्षा कर सकते हैं। और हम इसको कहां तक ऐसा आधार मान सकते हैं जिस पर हम चल सकें और उन कठिनाइयों को दूर कर सकें और अपने समाज का पुनः संगठन कर सकें जिससे कि निर्धनता न रहे, अज्ञानता तथा भुखमरी का लोप हो जाये, कुछ लोगों के हाथों में धन का केन्द्रीकरण न हो इत्यादि इत्यादि। इनमें से किसी बात पर विचार नहीं किया गया है। श्रीमान् जी, एक शब्द में मैं कहूंगा कि इन पर एक धोखे के रूप में विचार किया गया है। मैं ''धोखे'' शब्द के अर्थ को समझता हूं फिर भी इसके प्रयोग करने में मुझे कोई संकोच नहीं है। श्रीमान् जी, मैं यह इसलिये कहता हूं कि एक बार

[डा. पी.एस. देशमुख]

आप इनको मौलिक अधिकारों के रूप में रख लीजिये तो फिर आप किसी भी व्यक्ति को इससे आगे बढ़ने के लिये मना करेंगे। मैं चाहता हूं कि इस बात को स्पष्ट समझ लिया जाये कि इच्छा केवल यही नहीं है कि हम आगे न बढ़ें वरन् यह भी है कि हमारे बाद में आने वाले किसी व्यक्ति को भी आगे बढ़ने से रोकें, शब्दों में यह आशय छिपा हुआ है। मैं चाहता हूं कि अपने कथन को सत्य सिद्ध करने के लिये इसे पढ़ने तथा प्रत्येक विशेष सिफारिशों के शब्दों का विश्लेषण करने के लिये मैं सभा का समय लेता। पर यह स्पष्ट है कि जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह भारतीय स्थिति के लिये यथेष्ट दूर भविष्य तक ही केवल लागू नहीं होती है वरन् सिफारिशें ऐसी हैं कि हमारे बाद में आने वाले किसी व्यक्ति को भी मौलिक सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं करने देगी और इस मार्ग की ओर अग्रसर न होने देगी जो भारत के लिये एकमात्र मार्ग है। हमारी समस्यायें बड़ी हैं, हमारी आबादी बहुत है और हम एक भाग इधर से और दूसरा भाग उधर से तथा विशेषकर आयरिश विधान से लेने के लिये ही नहीं बैठ सकते हैं। आखिर यह विधान ऐसा तो है ही। हमारे सामने आयरिश विधान के भागों की नकल है और भारत सरकार के 1935 के एक्ट की तीन चौथाई नकल है। यदि यही विधान है जिसके लिये हम जल्दी कर रहे हैं तो मेरी समझ से तो जल्दी का कोई कारण नहीं है, क्योंकि इस बात को याद रखना चाहिये कि हमारे पास भारत सरकार के एक्ट के भली प्रकार से विचारे हुये संशोधान हैं और वे हमारे प्रयोजन के लिये यथेष्ठ हैं। श्रीमान् जी, यह मुझे विश्वास है कि जो प्रतिनिधि यहां आये हैं वे ऐसे हैं कि मैं समझता हूं कि कोई भारतीय विधान-परिषद् इनसे अच्छे सदस्य नहीं रख सकती है। श्रीमान् जी, देश के सर्वोच्च कोटि के विद्वान्, इस परिषद् में सम्मिलित हैं। इस अवसर पर किसी मौलिक वस्तु की, किसी ऐसी वस्तु की जो हमारे लोगों की कुशाग्र बुद्धि के अनुरूप हो, किसी ऐसी वस्तु को जो कि हमारे देश की प्राचीन सभ्यता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सानुरूप हो, रचना क्यों नहीं करते? मेरा यही निवेदन है, श्रीमान् जी, मैं आशा करता हूं कि कमेटी की सिफारिशों की, जो यहां हमारे सामने हैं, केवल सामान्य आलोचना करने तक ही अपने आपको सीमित रखेंगे और मैं आशा करता हूं कि यदि वे शीघ्रता में इन सिफारिशों को स्वीकृत न होने देंगे तो वे एक महान् सेवा करेंगे। जब मैंने यह कहा था कि सभा के निश्चयों के बंधन में हम नहीं हैं तो यही विचार मेरे मन में था। मैं अनुभव करता हूं कि जब हमारे सामने समूचा विधान होगा तो हम अपने लिये स्वयं यह स्वतंत्रता चाहते हैं कि यदि आवश्यकता हो तो सारे ढांचे को बदल दिया जाये। कल मैंने कहा था कि हमने कोई ढांचा नहीं देखा है। मान लीजिये, हमारे पास ढांचा भी तो सूक्ष्म परीक्षण यह सिद्ध करेगा कि ढांचे का कुछ भाग मानवी है तथा अन्य भाग पाशविक है। यह वह ढांचा है जो न

तो शेष के अनुरूप है न उससे साम्य रखता है। यह वस्तुस्थिति होने के कारण श्रीमान् जी, मैं आपसे निवेदन करता हूं कि चूंकि हम इसके बाद एकत्रित नहीं हो रहे हैं, आज हमारी सभा का अंतिम दिवस है हम इन सिफारिशों पर केवल सामान्य वाद-विवाद ही करें। एक या दो मदों का स्वीकार करना किसी प्रकार भी हमारे आशय की पूर्ति करने में सहायक नहीं होगा। यदि वह कुछ करेगा भी तो केवल उसको कुछ हानि ही पहुंचायेगा; और सम्भव है कि बाद में हमें उनको भी बदलना भी पड़े।

इन बातों के साथ-साथ मैं अपने भाषण को संक्षिप्त करूंगा क्योंकि मैं कल दो बार बोला, इस कारण सभा का अधिक समय लेना नहीं चाहता हूं। मैं आशा करता हूं कि मेरी बातें आपको तथा सभा को मान्य होंगी।

श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी (संयुक्त प्रांत: जनरल): पूज्य अध्यक्ष महोदय, मैं इस रिपोर्ट की जो मौलिक अधिकारों के संबंध में आपके सामने और हम लोगों के सामने पेश की गई है, उसका स्वागत करता हूं। यद्यपि मैं पूरे सार से उन तमाम बातों से सहमत नहीं हूं तो भी उसके कुछ विशेष अंशों का विशेष तौर से स्वागत करता हूं।

मैं इस असेम्बली के सदस्यों का ध्यान विशेष तौर से 8वीं धारा की तरफ आकर्षित करना चाहता हूं। उसमें कहा गया है कि 10 वर्ष के अन्दर हमारी स्वतंत्र सरकार गांव-गांव में प्रत्येक गरीब के लिये प्राथमिक शिक्षा पूर्ण रूप से कर देगी। उसका एक अर्थ यह हुआ है कि 10-12 और 15 वर्ष के अन्दर अगर बूढ़े, जवान को शिक्षा नहीं मिल सकेगी तो कम से कम बालकों की शिक्षा का पूरी तरह से प्रबंध कर देगी और कोई बालक हमारे देश में ऐसा नहीं रहेगा जिसको शिक्षा पाने का सुयोग प्राप्त न हो सकेगा। इसका मैं विशेष तौर से स्वागत करता हूं। अन्य बातें बहुत आवश्यक हैं और जहां तक वे हैं, ठीक हैं। मैं नहीं समझता कि यह प्रस्ताव, यह धारा और या यह रिपोर्ट जो हमारे सामने पेश की गई है, केवल सदिच्छा से पेश की गई है। और मैं समझता हूं कि यदि हम पूरी तौर से अनुसरण करें तो इसमें शक नहीं कि हम देश को आगे बढ़ा सकते हैं। परन्तु यह होते हुये भी इसमें कुछ धारा ऐसी हैं जो अच्छी होते हुये भी बिल्कुल अपर्याप्त हैं। इस सिलसिले में विशेष तौर से धारा 3 और 4 की तरफ आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं। कुछ और भी ऐसी हैं जो इसमें रहनी चाहियें लेकिन वह उसमें नहीं हैं।

मुझे संशोधन देखने से मालूम हुआ कि किसी न किसी रूप में वह हमारे सामने आ रही हैं और जब हम प्रत्येक धारा को अलग-अलग से विचार करेंगे,

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

हमारे सामने सिद्धान्त भी आयेंगे और हमें आशा है कि इन सिद्धान्तों को पूरी तौर से विचार करके अमल करेंगे। विशेष तौर से मौलिक अधिकारों के संबंध में पहले भी एक रिपोर्ट पेश हुई थी, जिसे हम लोगों ने स्वीकार किया था। वह मौलिक अधिकार जो कानून द्वारा अलग किये जा सकते हैं, अदालत के द्वारा जिन पर अमल कराया जा सकता है, ये सिद्धान्त जो हमारे सामने हैं वे आधारभूत हैं। सिद्धान्त तो शासन के रहेंगे लेकिन अदालतों द्वारा हम उनको अलग नहीं कर सकते हैं। जिस समय वह पहली रिपोर्ट हमारे सामने पेश हुई थी उस समय हमारी विधान-परिषद् का रूप भिन्न था। यद्यपि हम चाहते थे कि उसे पूरे अधिकार हों फिर भी उस समय कुछ बंधन थे, रोक थी, जिसके कारण हम पूरे तौर से स्वतंत्रता के साथ अपना विधान बनाने में असमर्थ थे। लेकिन 15 अगस्त के बाद, यद्यपि हमारे पास औपनिवेशिक स्वराज्य है, पूर्ण स्वराज्य नहीं, फिर भी यह विधान-समिति विधान-परिषद् ऐसा विधान बनाने जा रही है जिसके द्वारा हमारे देश में पूर्ण स्वराज्य आयेगा। अब 15 तारीख के पहले से अवस्था में विशेष अन्तर हो गया है। इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि जब हमारे सामने पूरे रूप में शासन-विधान आये तो उस समय हम लोग फिर से उन सिद्धान्तों पर विचार करें जो पहले हमने स्वीकार किये थे। इसका कारण यह है कि उस समय हमारे मस्तिष्क में कुछ बन्धन थे, रोक थी, जिसके कारण हम स्वतंत्रता के साथ अच्छी तरह से विचार नहीं कर सकते थे। परन्तु अब जब वह हमारे सामने आयेगा तो हम अधिक स्वतंत्रता के साथ विचार कर सकेंगे। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि कल आपने हमको इस बात का अधिकार दिया है कि जब पूरा शासन-विधान हमारे सामने आयेगा तो उस पर हम बहस और मुबाहसा कर सकते हैं और अपने सुझाव परिषद् के सामने पेश कर सकते हैं। मैं विशेष तौर से आपका ध्यान धारा 3 और 4 की तरफ खींचना चाहता हूं, उसमें आर्थिक अधिकारों के संबंध में चर्चा की गई है। जो कुछ इसमें कहा गया है वह बहुत अच्छा है लेकिन उनके होते हुये भी क्या हम इस कार्य को पूरा कर सकेंगे, जो कार्य हमारे लिये आवश्यक है? हमें स्वतंत्र शासन लाने पर अवश्य विचार करना चाहिये। यह हमारी ही इच्छा नहीं है बल्कि प्रत्येक कांग्रेसजन की इच्छा है। मैं समझता हूं कि हमारे देश के प्रत्येक निवासी की यह इच्छा है कि हमारे देश में गरीबों की दशा सुधरे। गरीबों को अमीरों के ऊपर आश्रित न होना पड़े। आजकल गरीबों के लिये अमीर लोग कुयें खुदवाकर, धर्मशालायें बनाकर और गोशाला बनाकर यह पुकारते हैं कि हम गरीबों की हर प्रकार की मदद करते हैं। इससे गरीबों के स्वाभिमान पर धब्बा लगता है और

इस तरह से गरीब कभी भी उठ नहीं सकते हैं। जरूरत इस बात की है कि गरीबों को यह बात महसूस हो, यह अनुभव हो कि हम अधिक ऊंचे उठ सकते हैं और हमको भी वही अधिकार हासिल हैं जो दूसरे मनुष्यों को ऊंचे उठने के लिये होते हैं। इस भावना को गरीबों के सामने हम तभी ला सकते हैं जब कि आधारभूत सिद्धान्तों में तब्दीली करें, उनकी जड़ों को और नीचे तक पहुंचाया जाये। हम अपने शासन विधान को समाजवाद के आधार पर तैयार करें। इसका एक आभास नम्बर 3, धारा 4 में आता है। लेकिन यह धारा दुनिया के नये शासन विधानों में मौजूद है। जहां गरीबों के साथ जो न्याय देना चाहिये वह न्याय नहीं दिया जाता है। आज किसी भी देश में देखते हैं तो वहां गरीबों को अमीरों के आश्रित रहना ही पड़ता है। इसी दशा में मैं नहीं कह सकता हूं कि हमारे देश में उनका कितना प्रभाव होगा और कितना नहीं होगा।

हमारे देश में करीब 25 और 30 साल से देश की आजादी के लिए नेताओं ने बड़े-बड़े त्याग, बलिदान और तपस्या की है। हमारे बीच में हमारे अध्यक्ष मौजूद हैं, जिन्होंने अपने जीवन भर में बलिदानों का एक नमूना दुनिया और हमारे सामने पेश किया है। इस तरह से हमारे नेता भी बहुत मौजूद हैं। ठीक है, इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन आज जो कानून हम बना रहे हैं, आज के लिये नहीं बना रहे हैं बल्कि सदियों के लिए बना रहे हैं। इसलिए हम उन सिद्धांतों को उसमें लायें जिन सिद्धांतों के आधार पर, आगे चलकर पूरे तौर से अमल किया जा सकेगा। चाहे हमारे ये नेता उस समय हों या न हों, वह शासन विधान तब्दील हो सकेगा। आप आज क्या देखते हैं कि हमारी सरकार हमारे साथ में होते हुए भी, हमारी कांग्रेस का त्याग और तपस्या देश के सामने होते हुए भी क्या स्थिति है और हम लोगों की कोशिशों और चेष्टाओं के बावजूद भी पूंजीपतियों का अधिकार और प्रभाव बढ़ता चला जाता है। क्या हर एक को हममें से पता नहीं है कि जितने बड़े-बड़े अखबार हैं, वह धीरे-धीरे एक-एक करके सारे पूंजीपतियों के हाथ में चले जा रहे हैं? समाचार पत्रों की श्रृंखलाएं पूंजीपतियों के हाथों में चली जा रही हैं। यदि पूंजीवाद के विरुद्ध आप अखबार में कोई चीज देना चाहें तो यह किसी तरह संभव नहीं है कि बड़े-बड़े अखबारों में वह प्रकाशित हो सके। अभी तो और गनीमत है, क्योंकि आज तो वे लोग हमारा नेतृत्व कर रहे हैं, जिन्होंने जिन्दगी को त्याग, तपस्या और गरीबों की सेवा करने में व्यतीत किया है, लेकिन 10, 15 साल बाद जब ये लोग बढ़े ही चलेंगे और इनमें काम करने की सामर्थ्य नहीं रहेगी या जिस समय और साधारण लोग ऊपर उठकर आयेंगे, जिन्होंने कि

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

देश के लिए त्याग और तपस्या नहीं की है, उस समय क्या दशा हो सकती है? क्या आप इसकी कल्पना कर सकते हैं? इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इस समय ऐसा विधान तैयार करें जिससे कि ऐसी संभावना हमारे सामने न आ सके। लिहाजा मेरे विचार में तो प्रत्येक विधान और खास तौर से जब भविष्य के लिए कोई विधान बनाया जाता है, उसमें चार बातें बहुत आवश्यक हैं। इन चार बातों में से कुछ बातें इसमें हैं और कुछ बातें संशोधन के रूप में आ रही हैं और कुछ बातें शायद उस समय आयेंगी, जब पहली रिपोर्ट पूरे शासन-विधान के मसविदे के साथ आयेगी, और उस सिलसिले में हम लोग अपना सुझाव पेश करेंगे। लेकिन उन चार बातों का उल्लेख मैं आपके सामने करना चाहता हूं। पहला मौलिक सिद्धान्त जो हमारे शासन का होना चाहिये वह यह है कि गरीब आदमी को इस बात का पूरा अधिकार हो कि वह ऊंचे से ऊंचा उठ सके, उसको इस बात का अवकाश हो कि वह ऊंचे से ऊंचा उठ सके, किसी की दया से नहीं बल्कि अपनी शक्ति से और समाज की सहायता से।

मैं बहुत नम्रता के साथ किसी आलोचना की दृष्टि से नहीं बल्कि जो मैं स्वयं अपने हृदय में अनुभव कर रहा हूं, वह यह है कि हमने सब चीज तो शासन विधान में बनाई, बहुत से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न किया, लेकिन हमने गरीब आदमी के लिए एक शब्द भी न लिखा। सिवाय सदिच्छा के और कोई शब्द हमारे पूरे शासन-विधान में नहीं मिलता। सिवाय एक बात को छोड़कर और वह यह कि उसको वोट देने का अधिकार अवश्य दे दिया गया है, इसके अलावा एक गरीब के लिए कोई बात हमारे शासन विधान में अभी तक नहीं आई है, मैं इस बात के लिए मशकूर हूं और कृतज्ञ हूं। लेकिन इतना काफी नहीं है। इसलिए मैं बहुत ही नम्रता के साथ कहूंगा कि आप इसमें कुछ ऐसे नियम लाइये जिसमें यह स्पष्ट हो सके कि हमारा जो शासन-विधान तैयार होगा और उस पर जब अमल होगा, तो उसमें यह नहीं होगा कि थोड़े से पूंजीपतियों और कुछ थोड़े से लोगों का साम्राज्य हो और उनका शासन हो। और गरीब आदमी और साधारण जन-समूह उनकी दया पर आश्रित रहे। अक्सर मेरे कुछ मित्र हैं जो समाजवाद के नाम से चिढ़ते हैं। मैं उन्हें चिढ़ाना भी नहीं चाहता और कोई जरूरत नहीं है कि समाजवाद का नाम लिया जाये। लीजिये तो बड़ा अच्छा, मुझे तो इससे प्रेम है और मैं समझता हूं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू के उन विचारों से सहमत हूं जो उन्होंने पहले फंडामेंटल राइट्स पर बोलते हुए कहा था कि एक समय आयेगा कि जब हमारे देश में और संसार में समाजवाद का बोलबाला

होगा। फिर भी अगर कुछ लोग इस शब्द से चिढ़ते हैं, तो मैं कोई ऐसा कठपुतला नहीं हूं कि उस शब्द को बार-बार अपने लोगों और साथियों को चिढ़ाने के लिए इस्तेमाल करूं। इसलिए आप अगर समाजवाद शब्द से चिढ़ते हैं तो रहने दीजिये इस शब्द को। लेकिन आप ऐसे नियम लायें जिसमें हमारे शासन पर वैस्टैड इन्ट्रेस्ट पूंजीवादियों का, ऐसे लोगों का, जो गरीब आदमियों को हमेशा दबाये रखना चाहते हैं, प्रभुत्व न हो सके। आप कम से कम इतना ही कीजिये कि किसी भी ऊंचे ओहदे पर, धारा सभा की सदस्यता पर और मिनिस्टरी में वह लोग न खड़े हो सकें जो लोग वैस्टैड इन्ट्रेस्ट से हैं, जो पूंजीपति हैं। मुझे दुख होता है, परन्तु कहना पड़ता है, किसी भी आलोचना की दृष्टि से नहीं और मैं अपनी बात नहीं कर रहा हूं। जब मैं सड़क पर नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली में जाता हूं, तो मेरे कानों में आवाज पहुंचती है कि अमुक-अमुक कमेटियों में कैसे-कैसे लोग रखे गये हैं। जनता को इस बात का संदेह होता है कि आखिर जो शासन-विधान बन रहा है क्या उन गरीब आदमियों के लिये बन रहा है, जिन्होंने 30 साल से लगातार त्याग और तपस्या की है और देश के लिये 30 साल से मरे हैं। हम जनता को क्या जवाब दें? ठीक है, यह भी हम मानते हैं कि एक अवस्था तक हमें पूंजीपतियों की आवश्यकता हो सकती है लेकिन शासन-विधान में उनका इस तरह से प्रभाव हो जाये, यह कोई मुनासिब नहीं और इसको देश कभी पसंद नहीं कर सकता है, और मुझे मालूम है कि हमारे नेता, जिन्होंने देश के लिये तकलीफें उठाई हैं, वह भी पसंद नहीं कर सकते और अगर वह पसन्द नहीं करते तो हमें शासन-विधान में कोई ऐसा तरीका लाना है जिससे आगे चल कर इनका, पूंजीपतियों का, प्रभाव न हो सके। यह बहुत आवश्यक बात है और इसमें दो बातें हो सकती हैं। एक तो अगर आप चाहें तो यह कर दें कि हमारा शासन-विधान हमारे शासन का निर्माण और हमारी समाज रचना भविष्य में समाजवाद के आधार पर होगी लेकिन अगर आप समाजवाद शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहते हैं तो आप यह कह सकते हैं कि उसमें हम किसी तरह का पूंजीवाद रखने के लिये तैयार नहीं हैं और साथ ही साथ जब तक हम पूंजीवाद को रखने के लिए मजबूर हैं, तब तक हम यह कर दें कि किसी भी बड़े सरकारी ओहदे पर वह शख्स नहीं हो सकता जो लाभ उठाने के कार्य में लगा हुआ हो। आप समझ सकते हैं कि कौन शख्स प्रोफिट मोटिव से सरकार में आता है या किसी तरह से बेजा फायदा उठाता है, यह आपको अच्छी तरह से मालूम है। आप लोगों के और कांग्रेस मैनों के दिमाग में बहुत से चित्र सामने आते हैं कि किस तरह से लोग बेजा फायदा उठाते हैं। तो मैं बहुत अदब के साथ कहूंगा कि यह आवश्यक है कि हम इन मौलिक अधिकारों में कोई ऐसा संरक्षण लगायें, जिनके द्वारा हम आयन्दा के लिए शासन-विधान पर लागू होने के खातिर आ सकें। और जब तक

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

हम ऐसा संरक्षण नहीं रखेंगे तब तक इस शासन-विधान से देश के गरीब आदमियों का लाभ नहीं होगा। यह सब तो ठीक है कि हम गवर्नरों और मंत्रियों की तनख्वाहें देश की स्थिति पर ध्यान रखते हुए तय करें और सदस्यों का क्या भत्ता होगा, इसका भी फैसला करें। लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात के देखने की है कि हम छोटे से छोटे गरीब आदमी को किस तरह से बढ़ायेंगे। किसी की दयादृष्टि से ही उनकी आमदनी नहीं बढ़ाना है बल्कि शासन-विधान में ऐसी चीज रखनी है जिससे वे अपना जीवन सुखमय बना सकें और उनकी आमदनी बढ़ सके। यह सबसे बड़ा मुख्य और आवश्यक कार्य हमारे सामने है। आज जब बाहर जाते हैं तो लोग यह कहते हैं कि इसमें आप गरीबों के लिए क्या बात कर रहे हैं, और गरीबों को क्या स्थान दे रहे हैं? और गरीबों के लिए जब तक यह चीज नहीं होती, तब तक वह साफ-साफ कहते हैं कि यह शासन-विधान हम लोगों के लिए बेकार है।

एक तो सबसे बड़ी बात यह है और मैं समझता हूं कि सबसे आवश्यक; दूसरी चीज यह है कि हमें अपने राष्ट्र को मजबूत बनाना है, सुसंगठित बनाना है। सुसंगठित बनाने के लिए दो तीन बातों की आवश्यकता होती है। एक तो यह कि हमारे में सांस्कृतिक एकता हो। सांस्कृतिक एकता के लिए और बातों के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि हमारे देश में देश की एक भाषा हो। मैं आपका ध्यान अपने लायक दोस्त चौधरी खलिकुज्जमा के वक्तव्य की ओर खींचना चाहता हूं। जिस समय पाकिस्तान होने जा रहा था उस समय उन्होंने इस बात का ऐलान किया था कि पाकिस्तान की भाषा उर्दू होगी। मैं समझता हूं कि किसी को इससे द्वेष नहीं होना चाहिये। एक राष्ट्र में प्रधान राष्ट्रीय भाषा एक ही हो सकती है और उस दिन मुझे ख्याल हुआ कि यह बात सिद्धांत रूप में बड़ी सच्ची है और ऐसी दशा में यह भी आवश्यक है कि हम भी इस बात का निश्चय करें कि हमारे देश में भी एक भाषा होगी और जब तक हम यह निश्चय नहीं करते तब तक इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ नहीं हो सकती और सांस्कृतिक एकता भी ठीक नहीं हो सकती। हम यह भी मानते हैं कि हजार, दो हजार, दस हजार हमारे मुसलमान भाई देश के बाहर से आये थे, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि यह कहना कठिन है कि उनमें से कुल कितने हैं और हैं या नहीं, लेकिन इस समय अधिकांश 99 फीसदी मुसलमान, 100 फीसदी हिंदू, 100 फीसदी ईसाई एक ही पूर्वजों की संतान हैं। यह हो सकता है कि हममें से कुछ गलती में आकर राम और कृष्ण को गाली देने लगे। लेकिन जब सब चीजें एक ठीक ठिकाने से बैठ जावेंगी और जब यह कलुषित भावनाएं

तथा जो विष फैला हुआ है, वह खत्म हो जायेगा तो इसमें संदेह नहीं कि यहां का प्रत्येक मुसलमान, प्रत्येक हिंदू राम और कृष्ण को अपना पूर्वज मानेगा। दुनिया के इतिहास में यही हुआ है। वह तो संयोग ऐसा है कि हमारे बीच में बेदिली बढ़ती गई और उसका परिणाम यह हुआ कि हम अलहदा-अलहदा होते गये। हमारी एक संस्कृति है, यह हम थोड़े दिन में अनुभव करेंगे। हमारी एक संस्कृति है, इसके यह अर्थ नहीं हैं एक-दूसरे की संस्कृति में हमने भाग नहीं लिया और जो संस्कृति है उसमें दोनों का भाग नहीं है। मैं मानता हूं दोनों का भाग है, लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि हमारे संस्कार एक हैं। अगर हमारी भाषा एक कर दें तो इसमें कोई संदेह नहीं कि पूरी तौर से हमारी संस्कृति एक हो जायेगी और हमारा देश आगे बढ़ सकेगा।

मुझे यह जानकर खुशी है कि बहुत जल्द आपके सामने यह प्रस्ताव आयेगा कि हमारे देश की भाषा हिंदी हो और हमारी लिपि देवनागरी हो। मैं समझता हूं कि इस असेम्बली के तमाम सदस्य और देश का प्रत्येक बच्चा बच्चा इस चीज का स्वागत करेगा।

दूसरी बात जो अभी आपके सामने आ रही है और जो मौलिक अधिकारों में बहुत आवश्यक है, वह है हमारे यहां की संस्कृति की विशेष आवश्यकता। हमारा देश हमेशा से कृषि प्रधान रहा है, और चाहे जितना हम व्यापार बढ़ायें जब तक हम साम्राज्यवादी नहीं होना चाहते—और साम्राज्यवादी हमको नहीं होना चाहिये—तब तक हमारा देश कृषि प्रधान रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। जो देश कृषि प्रधान हो उसमें गौ-रक्षा का विशेष महत्व है। मुझे इस बात को जानकर खुशी है कि आपके सामने एक प्रस्ताव बहुत सुन्दर रूप में आ रहा है और मैं आशा करता हूं कि हमारी यह परिषद् उसे स्वीकार करेगी। इस पर भी बहुत तरह का वाद-विवाद हमारे बीच में चला। मैं तो केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह आवश्यक समझता हूं कि हमारे देश में गो-रक्षा का प्रबंध हो। दोनों विचारों से, दोनों दृष्टिकोणों से, चाहे आर्थिक दृष्टिकोण हो चाहे सांस्कृतिक दृष्टिकोण हो, मुनासिब है और आवश्यक है कि हम अपने देश में गो-रक्षा का प्रबंध करें और मुझे खुशी है कि वह प्रस्ताव आपके सामने आ रहा है।

दूसरी और आवश्यक बात है जो अभी आपके सामने नहीं आई है लेकिन मैं यह समझता हूं कि जब धीरे-धीरे मसविदा, जिसमें तमाम मौलिक अधिकार भी शामिल होंगे, आपके सामने आयेगा। उस समय आपके सामने पेश होगी और वह यह है कि हम अपने राष्ट्र को किसी प्रकार से बली बनायें, किसी प्रकार

[श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी]

से शक्तिशाली बनायें। हम किसी भी दुनियां के राज्य पर आक्रमण नहीं करना चाहते, हम तो यह भी नहीं चाहते कि दुनियां में अब आयन्दा युद्ध भी हो। लेकिन खाली मेरे चाहने से कोई बात हमेशा नहीं होती। हम चाहते हैं कि हिदुस्तान अगर 50 फीसदी शांति चाहता हो तो हम 100 फीसदी शांति दें और हर तरह से दुनियां में शांति लाने का प्रयत्न करें। परन्तु वह कार्य भी हम तभी कर सकते हैं जब हम बली हों। हमारा देश संसार की जनसंख्या के हिसाब से सबसे बड़ा देश है और इसलिए संसार के सामने हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम संसार की जो बड़ी लड़ाई चल रही है, हिंसा की, उसको रोकें। लेकिन वह रोक हम तभी सकते हैं जब हम स्वयं बलिष्ट बनें और उसके लिए आवश्यक है कि हमारे यहां का प्रत्येक नौजवान फौजी शिक्षा हासिल करे। मैं चाहता हूं कि हम यह नियम कर दें कि हमारे देश का प्रत्येक नौजवान फौजी शिक्षा हासिल करेगा, चाहे वह कोई भी हो जब तक वह शारीरिक अवस्था से असमर्थ न हो। उसके लिये आवश्यक होगा कि वह फौजी शिक्षा प्राप्त करे और राज्य उसे मजबूर करेगा कि उसे फौजी शिक्षा प्राप्त करनी होगी। वह केवल बली ही बनाने की दृष्टि से नहीं बल्कि जो शताब्दियों से कुछ असंयम (इण्डिसीपिलिन) आ गया है उसको दूर करने के लिये भी। यह आवश्यक होगा कि हमारे यहां आम तौर पर कोन्सक्रिप्शन किया जाये और फौजी शिक्षा दी जाये।

यह चार बातें बहुत आवश्यक हैं और मैं यकीन करता हूं कि समय-समय पर जब यह बातें आयेंगी तो आप उन पर विचार करेंगे और परिषद् उनका समर्थन करेगी। मैंने प्रारम्भ में ही कहा कि जहां तक सिद्धान्तों का, जो इस रिपोर्ट में दिये गये हैं, सम्बन्ध है, मैं उनका स्वागत करता हूं, लेकिन मैं समझता हूं कि वह बिल्कुल अपर्याप्त है। जब तक यह मौलिक सिद्धान्त और जोड़े नहीं जाते तब तक न गरीबों के जनसमूह का पूरी तौर से हित हो सकता है न हमारा राष्ट्र बलिष्ट बन सकता है। मैं आशा करता हूं कि इसका तमाम विधान-परिषद् और विधान-परिषद् के सदस्य स्वागत करेंगे और इन सिद्धान्तों को इसमें लाने का प्रयत्न करेंगे।

बस इन शब्दों के साथ मैं इसका फिर एक बार स्वागत करता हूं। जय हिन्द!

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार: जनरल): श्रीमान् जी, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''अब मत लिया जाये।''

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव है कि:

''अब मत लिया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान् जी, कल आपने सभा में यह कहा था कि बाद में रिपोर्ट के वाक्य-खंडों पर वाद-विवाद होगा। हममें से कुछ व्यक्तियों के, विशेषकर वाक्य-खंड 16 पर, संशोधन हैं। मैं आशा करती हूं कि बाद में संशोधन रखने का अवसर दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** अभी हमने इस प्रस्ताव को लिया है कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये और यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत होता है तो फिर हम एक-एक वाक्य-खंड को लेंगे और उस समय वाक्य-खंड पर किसी संशोधन को लिया जा सकेगा। क्या प्रस्ताविका महोदया उत्तर में कुछ कहना चाहती हैं?

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** मैं प्रसन्न हूं कि वाद-विवाद समाप्त हो गया। पूरक रिपोर्ट पर बड़ा ही रोचक सामान्य वाद-विवाद हुआ। पूरक रिपोर्ट की अपेक्षा मुख्य रिपोर्ट पर छोटा वाद-विवाद हुआ। जहां तक पूरक रिपोर्ट का सम्बन्ध है, सामान्य वाद-विवाद न्यायालय न जाने वाले अधिकारों पर आश्रित था और न्यायालय जाने वाले अधिकारों के उन चार वाक्य-खण्डों पर जो कि रिपोर्ट में दिये गये हैं, कुछ भी वाद-विवाद नहीं हुआ। वास्तविक लम्बा वाद-विवाद रिपोर्ट के अन्य भाग पर हुआ।

परन्तु रिपोर्ट कुछ शासन सम्बन्धी उद्देश्यों को निर्धारित करती है। हमने उद्देश्यों की व्याख्या करते हुये मुख्य प्रस्ताव को स्वीकार कर ही लिया है, चाहे आप लम्बा वाद-विवाद करें या न करें। यह बात तो न्यूनाधिक रूप में वाद-विवाद की बात है। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये और जब हम वाक्य-खण्डों को एक-एक करके लेंगे, और यदि कोई संशोधन पेश किया जायेगा तो उस समय मुझे कुछ कहना पड़े। परन्तु इस समय मुझे इससे अधिक और कुछ नहीं कहना है कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव है कि रिपोर्ट पर विचार किया जाये।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***श्री एम.एस. अणे** (दक्षिणी रियासतें): श्रीमान् जी, मैं यह बताना चाहता हूं कि यह एक साधारण नियम है कि जब उत्तर दिया जाता है तो जिस सदस्य को उत्तर दिया जाता है, उसे अपनी आलोचना का उत्तर सुनने के लिये सभा में रहना चाहिये। समस्त व्यवस्थापिकाओं में वाद-विवाद का यह प्रमाणित नियम है।

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि सदस्य लोग श्री अणे जैसे अनुभवी व्यवस्थापिका सदस्य की बात पर ध्यान रखेंगे।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** श्रीमान् जी, मैं वाक्यखंड 16 पेश करता हूं:

> ''सरकारी कोष द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस स्कूल में दी जाने वाली किसी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिये या उस स्कूल से सम्बद्ध अन्य स्थान में की जाने वाली किसी धार्मिक पूजा में उपस्थित होने के लिये विवश नहीं किया जायेगा।''

हम सिफारिश करते हैं कि परिषद् इस रूप में इस वाक्य-खण्ड को स्वीकार करे। समस्त संशोधनों पर विचार करने पर परामर्शदातृ-समिति की दीर्घ वाद-विवाद के पश्चात् यह अन्तिम सिफारिश है। हम अन्त में इस परिणाम पर पहुंचे कि मौलिक अधिकारों में समावेश करने के लिये यह सबसे अधिक उपयुक्त रूप है और मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह वाक्य-खण्ड सभा द्वारा स्वीकार किया जाये।

***अध्यक्ष:** इस वाक्य-खण्ड पर मेरे पास अनेकों संशोधनों की सूचना है।

***श्री आर.वी. धुलेकर** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): श्रीमान् जी, मैं एक छोटे से मौखिक परिवर्तन का सुझाव रखता हूं कि ''स्कूल'' शब्द के स्थान में ''शिक्षणालय'' शब्द रखा जाये।

***अध्यक्ष:** परन्तु आपने ऐसे किसी संशोधन की सूचना नहीं दी है।

***श्री आर.वी. धुलेकर:** जी नहीं।

***अध्यक्ष:** श्री धुलेकर सुझाव रखते हैं कि इस वाक्य-खण्ड की प्रथम पंक्ति में ''स्कूल'' शब्द के स्थान में ''शिक्षणालय'' रखा जाये। उन्होंने किसी संशोधन की सूचना नहीं दी है।

***श्री के.एम मुंशी:** श्रीमान जी, उससे बड़ा व्यापक अर्थ हो जायेगा। सारे का सारा मद बदल जायेगा। उससे आशय कालेज, पोस्ट ग्रेजुएट कालेज तथा किसी भी संस्था से हो सकता है। बात यह है कि दूसरे शब्द से बदलना साधारण विषय नहीं है।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान् जी, मैं पेश करती हूं कि वाक्य-खण्ड 16 की व्याख्या के रूप में निम्न पैरा जोड़ दिया जाये:

> ''छात्रों की बुद्धि को परिमार्जित करने के लिये न कि ऐसी बनाने के लिये कि जिसमें साम्प्रदायिक पृथकत्व को प्रोत्साहन मिले, सरकारी सहायता पाने वाले शिक्षणालयों में दी जाने वाली समस्त धार्मिक शिक्षा धर्मों के तुलनात्मक प्राथमिक ज्ञान के रूप में होगी।''

श्रीमान् जी, जैसा कि रिपोर्ट के प्रस्तावक महोदय ने बताया है कि इस वाक्य-खंड का उद्देश्य यह है कि उन छात्रों को जो इन स्कूलों में जाते हैं, यदि वे धार्मिक कक्षाओं में जाना नहीं चाहते तो उन कक्षाओं में उपस्थित होने के लिये विवश किये जाने से रोकना। इससे मैं पूर्णतया सहमत हूं। परन्तु मैं जानती हूं कि ऐसी अनेकों संस्थायें हैं जो धार्मिक आधार पर चलाई जाती हैं और जो कि शिक्षा के क्षेत्र में राज्य के स्थापन होने से बहुत पूर्व पदार्पण कर चुकी हैं। मेरे प्रान्त में ऐसे मकतब और पाठशालायें हैं जो स्कूल जाने वाले उम्र के बच्चों के शिक्षण का कार्य करते हैं, लेकिन हमने देखा है कि वहां इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा दी जाती है कि बच्चे की बुद्धि को परिमार्जित करने के स्थान में उसकी बुद्धि को दूषित करते हैं और इन मकतबों तथा पाठशालाओं में शिक्षा पाने के फलस्वरूप कभी-कभी एक विशेष प्रकार का धार्मिक अन्धविश्वास तथा कट्टरपन उत्पन्न हो जाता है। यह विवादास्पद विषय है कि हम इन धार्मिक स्कूलों को कोई आर्थिक सहायता दे या नहीं—मैं इस विषय को तो लेना ही नहीं चाहती क्योंकि इस आशय के लिये विशेषज्ञ नियुक्त कर दिये गये हैं और उनकी रिपोर्ट की प्रतीक्षा की जा रही है, और मुझे विश्वास है कि उसके पश्चात्, व्यवस्थापिका इस विषय में पूर्ण विवरण सहित प्रवेश करेगी। इस संशोधन को पेश करने से मेरा उद्देश्य यह है कि किसी भी व्यक्ति के धर्म में हस्तक्षेप किये जाने के, बिना किसी भय के सरकार इन संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा में प्रतिबन्ध लगायेगी या उसे नियंत्रित करेगी। पाठ्यक्रम सरकार के नियंत्रण में होना चाहिये और वह इस प्रकार का हो कि पृथकत्व उत्पन्न करने की अपेक्षा वह बुद्धि को अधिक परिमार्जित करे। जब हम अल्पसंख्यक अधिकार समिति की रिपोर्ट पर वाद-विवाद कर रहे थे,

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

हमने कहा था कि हमारा उद्देश्य एक संयुक्त राष्ट्र बनाने का होना चाहिये और हमने पृथक निर्वाचन पद्धति (separate electorate) का अन्त कर दिया। तथा मौलिक अधिकारों से सहमत हुये और प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का अनुसरण करने का अधिकार दिया। पर मुझे विश्वास है कि आप कैसी भी पार्थिव सरकार बनायें, जब तक राज्य का एक सदस्य दूसरे सदस्य के धर्म की प्रशंसा नहीं करता तब तक हमारे लिये संयुक्त भारत बनाना असम्भव होगा। इसलिये किसी के धर्म में हस्तक्षेप किये बिना राज्य को यह देखने का पूर्ण अधिकार है कि बालक की निर्माण अवस्था में जब कि वह स्कूल जाने योग्य आयु का हो, धार्मिक शिक्षा पर नियंत्रण किया जाये और पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो कि बालक भारत का कुशल नागरिक बने, तथा पारस्परिक विचारों की प्रशंसा करने की क्षमता रखे। हम राजनैतिक दलों द्वारा संगठित किये जा सकते हैं, परन्तु यदि हम एक दूसरे के धर्म का आदर नहीं करते तो हम देखेंगे कि अपने मध्य सच्चे धार्मिक व्यक्ति प्राप्त करने के अलावा हम एक इस प्रकार का पृथकत्व उत्पन्न कर देंगे जो बहुत हानिकारक होगा और मुझे भय है कि इस प्रकार के व्यक्तियों पर राष्ट्र के भविष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता है। इन थोड़े से शब्दों के साथ श्रीमान् जी, मैं अपना संशोधन पेश करती हूं और आशा करती हूं कि सभा मुझसे सहमत होगी और इसे स्वीकार करेगी।

***श्रीमती रेणुका रे:** श्रीमान् जी, मैं, प्रथम भाग को छोड़ कर, अपना संशोधन पेश करती हूं, अर्थात् वाक्यखण्ड 16 के स्थान में निम्न रखा जाये:

> ''राज्य द्वारा संचालित स्कूलों में कोई साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। राज्य द्वारा सहायता प्राप्त अथवा प्रमाणित किसी भी स्कूल या शिक्षण संस्थाओं में जाने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी किसी धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।''

श्रीमान जी, मैं अनुभव करती हूं कि रिपोर्ट के निर्माताओं ने इस आशय को व्यक्त करना नहीं चाहा जो इस वाक्यखंड द्वारा व्यक्त होता है, अर्थात्, राज्य द्वारा या सरकारी कोष द्वारा संचालित स्कूलों में शिक्षा मताश्रित हो। प्रजातंत्रात्मक पार्थिव? सरकार द्वारा साम्प्रदायिक स्कूलों का संचालन नहीं किया जा सकता है। उनको प्रमाणित किया जा सकता है तथा सहायता दी जा सकती है, परन्तु उनका वस्तुत: संचालन नहीं किया जा सकता। मैं लम्बा भाषण देना नहीं चाहती हूं। मैं केवल यह बताना चाहती हूं कि यदि वाक्यखंड 16 के स्थान में मेरा संशोधन रखा जाता

है तो यह उलझन दूर हो जायेगी और जिस आशय से यह वाक्यखण्ड रखा गया है, उसका अच्छा स्पष्टीकरण हो जायेगा। मैं आशा करती हूं कि इसकी आवश्यकता को सभा स्वीकार करेगी।

श्रीमान् जी, स्वतंत्रता प्राप्त करने के पूर्व भी शिक्षा विभाग की केन्द्रीय परामर्शदातृ-समिति ने निश्चय किया था कि इस देश में जो शिक्षा दी जायेगी वह मताश्रित नहीं होगी और साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा देने का उत्तरदायित्व उस सम्प्रदाय तथा घर पर होगा जिसका वह बच्चा है। मुझे विश्वास है कि अब जब कि हमें अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना है और हमें वह प्रजातन्त्रात्मक पार्थिव राज्य स्थापित करना है जिसके लिये कितने ही व्यक्तियों ने त्याग किया तथा प्राण न्यौछावर किये, तो हमें यह कहने का अधिकार है कि हम उसके सम्बंध में किसी प्रकार की असमानता रखना नहीं चाहते हैं। हम इस प्रकार पार्थिव राज्य की स्थापना करना चाहते हैं जो कि शिक्षा राज्य द्वारा दी जायेगी, वह इस प्रकार की नहीं होगी कि वह अपने ही हित-साधनों के विमुख हो। मैं यह नहीं कहती कि शिक्षा मताश्रित होगी ही नहीं परन्तु मैं यह कहती हूं कि राज्य द्वारा दी जाने वाली शिक्षा इस प्रकार की हो कि यद्यपि उसमें आध्यात्मिक शिक्षा हो, उसमें राज्य द्वारा नियंत्रित धर्म हो, परन्तु उसका स्वरूप साम्प्रदायिक न हो, और मैं आशा करती हूं कि सरदार पटेल इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे, क्योंकि यह समिति की इच्छा के प्रतिकूल नहीं है। वह केवल वाद हेतु को स्पष्ट करने के लिये है और यह सम्भव है कि वाक्यखण्ड के वर्तमान रूप से यह अर्थ लगाया जा सके कि हम राज्य द्वारा साम्प्रदायिक शिक्षा संचालन करना मान रहे हैं।

***अध्यक्षः** केवल दो संशोधनों की सूचना मेरे पास आई है। दोनों संशोधन पेश हो चुके हैं। अब प्रस्ताव तथा संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री के. सन्तानम्** (मद्रासः जनरल)ः श्रीमान् जी, श्रीमती रेणुका रे द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं जोरदार समर्थन करता हूं। मेरे विचार से वह उप-समिति के आशय को पूर्ण रूप से व्यक्त करता है। हमारे देश में एक ही धर्म में अनेकों प्रकार के मत हैं। हम चाहते हैं कि ग्राम पंचायतें शिक्षा पर नियंत्रण रखें, हम चाहते हैं कि स्थानीय संस्थायें शिक्षा पर नियंत्रण रखें। किसी विशेष क्षेत्र के विशेष भाग में किसी विशेष हिन्दू मत का प्राधान्य हो। हम यह नहीं चाहते कि शैवों को शैव मत की शिक्षा मिले, वैष्णवों को वैष्णव मत की शिक्षा मिले तथा लिंगायतों को लिंगायत मत की शिक्षा मिले। हम ऐसे वाद-विवादों के लिये तनिक भी गुंजायश

[श्री के. सन्तानम्]

नहीं रखना चाहते हैं। अत: यह आवश्यक है कि राज्य द्वारा संचालित समस्त स्कूलों में किसी प्रकार की भी धार्मिक शिक्षा न हो। अन्य एजेन्सियों को स्कूल समय से परे इस प्रकार की शिक्षा देने दीजिये। वह बिल्कुल ही एक भिन्न वस्तु है। इस प्रकार से मैं धार्मिक शिक्षा का विरोध नहीं कर रहा हूं और न मैं किसी साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा का ही विरोध कर रहा हूं, परन्तु हमारे सरकारी स्कूल पूर्णरूप से पार्थिव होने चाहियें। वे समस्त धार्मिक वाद-विवादों की सीमा से परे होने चाहियें। इसलिये यह संशोधन कहता है कि जहां राज्य द्वारा स्कूलों का संचालन होता है, उनमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा न दी जाये। समिति के आशय को यह और भी अधिक उपयुक्त तथा पूर्ण रूप से व्यक्त करता है। यदि कोई संस्था राज्य द्वारा प्रमाणित की जाती है अथवा उसे राजकोष से सहायता दी जाती है तो वहां अनिवार्यता नहीं होनी चाहिये। किसी सहायता प्राप्त स्कूल में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है, परन्तु जहां किसी छोटे बालक के माता-पिता तथा स्वयं वयस्क विद्यार्थी ऐसी कक्षाओं में उपस्थित होना नहीं चाहते हैं तो उसे किसी प्रकार की सजा न दी जाये। उसे इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा से अनुपस्थित रहने दिया जाये। मैं समझता हूं कि ये दोनों वाक्य-खंड मौलिक हैं और मैं आशा करता हूं कि ये सभा द्वारा सर्व सम्मति से स्वीकार किये जायंगे।

***श्री. एच.वी. पातस्कर** (बम्बई: जनरल): श्रीमान् जी, मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहूंगा। वाक्यखण्ड में दिया गया है ''स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को''। आरम्भ में श्री धुलेकर ने सुझाव रखा था कि इस शब्द ''स्कूल'' के स्थान में ''शिक्षण संस्थायें'' रखा जाये। जैसा कि मैं समझता हूं ''स्कूल'' शब्द का व्यापक रूप में प्रयोग किया गया है जिससे किसी भी शिक्षा देने वाली संस्था का बोध हो सकता है, परन्तु यदि यह विचार है कि हम कालेजों को अलग रख रहे हैं–वैसे तो वह भी एक प्रकार के स्कूल ही हैं जहां शिक्षा दी जाती है–तो मैं समझता हूं कि इसका आशय यह होगा कि सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में आप धार्मिक शिक्षा को अनिवार्य नहीं कर सकते हैं, परन्तु यदि हम ''स्कूल'' शब्द का संकुचित रूप में प्रयोग करें तो कालेजों में आप उसे अनिवार्य कर सकते हैं। बम्बई नगर के कुछ कालेजों से मैं परिचित हूं जिनमें कुछ काल पूर्व धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। अत: मैं आशा करता हूं कि माननीय प्रस्तावक महोदय उत्तर देते समय इस बात को स्पष्ट करेंगे।

***अध्यक्षः** मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रस्ताव तथा संशोधन पर और कोई व्यक्ति बोलना नहीं चाहता है। क्या सरदार वल्लभभाई पटेल उत्तर देंगे?

(मि. बी. पोकर साहब बहादुर खड़े हुये।)

***अध्यक्षः** अच्छा, आप बोलना चाहते हैं?

***श्री बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रासः मुस्लिम): जी हां, मैं संशोधन 34 के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। इस संशोधन का यह उद्देश्य प्रतीत होता है कि देश की समस्त जनता का एक धर्म की ओर एकीकरण करना या इससे कुछ मिलता जुलता आशय। यदि यही आशय है तब तो मैं अवश्य विरोध करूंगा। मैं यह कहूंगा कि सामान्य वाद-विवाद पर हिन्दुस्तानी में दिये गये पूर्व वक्तव्य में कुछ ऐसा ही सुझाव रखा गया था। वास्तव में मैं उसका अनुसरण नहीं कर सका और मुझे उस पर विचार करने का अधिकार नहीं है। परन्तु सामान्यतया मैं यह कहूंगा कि समस्त धर्मों के एकीकरण करने का या सरकारी स्कूलों में ऐसी शिक्षा देने का, जिसका आशय धर्म के एकीकरण से हो, प्रयत्न करना मौलिक अधिकारों के अन्य उन वाक्य-खण्डों के सर्वथा विरुद्ध है जिनको हमने स्वीकार कर लिया है। अब, श्रीमान् जी, मैं यह बताना चाहता हूं कि इस संशोधन 34 का स्वीकार करना अन्य वाक्य-खंडों के विरोध में होगा और वह मौलिक अधिकारों के प्रतिकूल होगा जिन पर हम अब तक कार्य करते चले आये हैं, और इस संशोधन का प्रचलन केवल असंतोष ही उत्पन्न नहीं करेगा परन्तु वह उन आधारभूत सिद्धान्तों का लोप करेगा जिन पर इस विधान का निर्माण किया जायेगा। मुझे संशोधन 59 पर कोई आपत्ति नहीं है पर मैं यह बताऊंगा कि यद्यपि राज्य द्वारा संचालित स्कूलों में साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा न दी जाये फिर भी स्कूल की विभिन्न कक्षाओं के लिये जो पाठ्यपुस्तकें निर्धारित की जाती हैं उन सबमें हम यह देखते हैं कि बहुत से धार्मिक विषयों का समावेश किया जाता है जो कि हिन्दू धर्म या अन्य किसी धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। मैं यह कहना चाहूंगा कि ऐसे विषयों को स्थान दिया जाये जो किसी धार्मिक विचार के समावेश किये बिना केवल नैतिक पहलुओं से सम्बन्ध रखते हैं, यदि उनको पाठ्यपुस्तकों में स्थान दिया ही जाता है तो वे सब धर्मों के समान रूप में होने चाहिये न कि केवल एक ही विशेष धर्म से।

इसलिये मैं इस संशोधन 34 का विरोध करूंगा और मूल वाक्य-खण्ड का उसी रूप में समर्थन करूंगा, लेकिन मैं यह कहूंगा कि ऐसी अनेकों शिक्षण संस्थायें

[मि. बी. पोकर साहब बहादुर]

हैं जो किसी विशेष अल्पसंख्यकों अथवा धार्मिक अल्पसंख्यकों की उन्नति के लिये हैं, क्योंकि शिक्षा में वे पिछड़े हुये हैं। मैं निवेदन करता हूं कि ऐसी शिक्षण संस्थाओं पर इस वाक्य-खण्ड का कोई प्रभाव न हो।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर** (मद्रास: मुस्लिम): यह एक महत्वपूर्ण विषय है और मैं मूल प्रस्ताव को तरजीह दूंगा अर्थात् जैसा कि समिति द्वारा बनाया गया है। मैं संशोधन 59 की प्रस्ताविका महोदया श्रीमती रेणुका रे से पूर्णतया सहमत हूं जिनका उद्देश्य यह है कि पार्थिव शिक्षा हो जिस पर किसी प्रकार की धार्मिक या आध्यात्मिक पूजा या शिक्षा का प्रभाव न हो और यही उद्देश्य होना चाहिये। दूसरी सदस्या द्वारा प्रेषित संशोधन कुछ विवादास्पद है। बच्चे को किस प्रकार की बुनियादी शिक्षा दी जाये यह अपने-अपने विचारों का विषय है और इससे वाद-विवाद बढ़ जायेगा। अत: श्रीमान् जी, संशोधन 34 पर कोई भी विचार नहीं किया जा सकता है। वह लाभ की अपेक्षा अधिक हानि करेगा। क्योंकि तुलनात्मक धर्म के प्रारम्भिक ज्ञान की व्याख्या करना बड़ा कठिन है। जैसा कि मैंने कहा है, मैं सामान्यत: श्रीमती रेणुका रे के संशोधन का वहां तक समर्थन करता हूं जहां तक कि उसका यह लक्ष्य है कि किसी सरकारी स्कूल में धार्मिक शिक्षा न हो, वह अन्य प्रमाणित तथा सहायता प्राप्त स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देने के विरोध में नहीं हैं। श्रीमती रेणुका रे के संशोधन से वही उद्देश्य न हो। इस बात को रखते हुये कमेटी द्वारा बनाया गया मूल प्रस्ताव बहुत ठोस है। ऐसा हो सकता है कि कुछ ऐसी संस्थायें हों जिनमें धार्मिक शिक्षा दी जाती हो और कुछ सरकारी सहायता मिलती हो, परन्तु यदि इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करना छात्र के लिये अनिवार्य नहीं है तो इसमें कोई हानि नहीं है। वह रह सकता है। अत: श्रीमान् जी, मैं समझता हूं कि कमेटी द्वारा संशोधित रूप में रखा गया वाक्य-खंड श्रेष्ठतर है, और मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्या श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा प्रेषित प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करने के लिये मैं खड़ा होता हूं। प्रस्ताविका के व्यक्तित्व ने मुझे ऐसा करने के लिये प्रेरित नहीं किया है वरन् मैं समझता हूं कि दोनों प्रस्तावों को साथ-साथ लेते हुये जो प्रस्ताव श्रीमती बनर्जी द्वारा पेश किया गया है वह हमारे पार्थिव शिक्षा के आदर्श की प्राप्ति के अधिक निकट है। मेरी माननीया मित्र श्रीमती रेणुका रे ने माननीय सरदार पटेल से जोरदार अपील की है और मुझे विश्वास है कि वे दोनों संशोधनों में

से किसी को पसन्द करने की स्थिति का उपभोग नहीं कर रहे हैं परन्तु जैसा कि प्रसिद्ध है वे किसी भी कठिनाई को झेलने की क्षमता रखते हैं तथा मुझे विश्वास है कि वे इस कठिनाई को भी पार करेंगे और श्रीमती रेणुका रे की अपील का आदर करेंगे तथा श्रीमती बनर्जी के प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे।

***श्री के.एम. मुंशी:** अध्यक्ष महोदय, इस मौलिक अधिकार के सम्बन्ध में मेरा पहला प्रस्ताव यह है कि ''पब्लिक फण्ड्स'' शब्दों के स्थान में वास्तव में ''स्टेट फण्ड्स'' होना चाहिये। श्री कामठ का प्रस्ताव प्रत्यक्ष रूप से दृष्टि से ओझल हो गया। जब कि मूल मौलिक अधिकार स्वीकार किया गया था जहां कहीं ''पब्लिक फण्ड्स'' शब्द रखे गये थे उनके स्थान में ''स्टेट फण्ड्स'' रख दिये गये थे। उद्देश्य यह था कि जनता से चन्दे द्वारा एकत्रित किये गये धन को ''स्टेट फण्ड्स'' के रूप में नहीं समझना चाहिये। इसलिये मैं प्रस्तावक महोदय से प्रार्थना करूंगा कि इस मौखिक परिवर्तन को स्वीकार किया जाये। मेरा दूसरा निवेदन श्रीमती बनर्जी द्वारा पेश किये गये संशोधन के सम्बन्ध में है। उद्देश्य चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, सभा को यह स्मरण रखना चाहिये कि यह न्यायालय जाने वाला अधिकार है, अत: इसके एक-एक शब्द पर विभिन्न उच्च न्यायालयों तथा अन्त में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वाद-विवाद होगा, विचार होगा तथा निर्णय होगा। यदि श्रीमती बनर्जी का संशोधन न्यायालय जाने वाले अधिकार के समान कानून बन जाता है तो यह स्थिति होगी। एक स्कूल है जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है। सबसे पहला प्रश्न किसी मित्र अथवा उत्साही व्यक्ति द्वारा उठाया जायेगा वह यह होगा–''क्या वह तुलनात्मक धर्म के आरम्भिक ज्ञान के रूप में है?'' अत: मामला सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया जायेगा, और 11 कुशल न्यायाधीशों को यह निर्णय करना होगा कि जो शिक्षा दी जाती है वह किसी विशेष धर्म की है अथवा तुलनात्मक धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा है। इसके निर्णय करने के पश्चात् दूसरा प्रश्न जिस पर विद्वान न्यायाधीशों को अपना ध्यान आकर्षित करना होगा यह होगा कि यह प्रारम्भिक ज्ञान छात्रों की बुद्धि को परिमार्जित करने के लिये है या संकुचित करने के लिये। तत्पश्चात् उन्हें प्रत्येक शब्द के क्षेत्र पर निर्णय देना होगा, क्योंकि यह न्यायालय जाने वाला अधिकार है जिस पर उनका निर्णय होना चाहिये। मुझे इसमें संदेह नहीं कि मेरे हमपेशे सदस्य इस बात पर यथेष्ट प्रकाश डालने में खुश होंगे कि इस प्रकार के न्यायालय जाने वाला अधिकार क्या है तथा क्या नहीं है।

एक सदस्य: ''फीस के लिये''।

***श्री के.एम. मुंशी:** हां, बहुत अच्छी फीस के लिये।

फिर उन्हें यह विचार करना होगा कि किसी विशेष प्रकार की शिक्षा साम्प्रदायिक पृथकता तो उत्पन्न नहीं करती है। इस सबके लिये मेरी समझ से काफी मुकदमेबाजी की आवश्यकता होगी, इसके पूर्व कि इस अधिकार पर अन्तिम निर्णय किया जाये।

***एक माननीय सदस्य:** क्या मैं माननीय सदस्य से यह पूछ सकता हूं कि क्या विश्वविद्यालयों तथा शिक्षण केन्द्रों में पढ़ाया जाने वाला तुलनात्मक धर्म बुद्धि को संकुचित करने वाला नहीं है और क्या छात्रों की बुद्धि उससे दूषित नहीं होती है?

***श्री के.एम. मुंशी:** यह वैधानिक आपत्ति नहीं है, वरन् एक प्रश्न है। वहां वकीलों का कार्यालय इस बात पर विचार करने के लिये नहीं है कि यह तुलनात्मक ज्ञान या प्रारम्भिक तुलनात्मक ज्ञान जो कि शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाया जाता है, छात्रों की बुद्धि को परिमार्जित करता है या नहीं। ये निर्णय मय भारतीय रियासतों के सारे देश के लिये होंगे। परन्तु ये सब शब्द इस प्रकार के हैं कि इनकी न्यायोचित भाषा में व्याख्या नहीं की जा सकती, जब तक कि दर्जनों निर्णय न हों तथा लाखों रुपया खर्च न हो। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि यह उस सिद्धांत के सदृश अधिक है जिसको व्यापक विवेकाश्रित विज्ञान कहा जा सकता है तथा इसको कानून द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और न्यायालय जाने योग्य तथा न्यायालय न जाने योग्य अधिकारों में निहित किया गया है। इस प्रकार के प्रयत्न करने से काफी गड़बड़ी होगी। यदि यह निर्धारित करने का विचार ही है कि धार्मिक शिक्षा इस प्रकार की न हो जो कि पृथकत्व उत्पन्न करे तो उसके लिये किसी श्रेष्ठतर वाक्यशैली का अनुसरण करना होगा।

उसके औचित्य पर मैं केवल एक शब्द कहना चाहूंगा और वह यह है: साम्प्रदायिक शिक्षण संस्थायें भी बहुधा धार्मिक शिक्षा देती हैं। वे ऐसा इसलिए नहीं करती हैं कि विद्यार्थियों को तुलनात्मक विज्ञान का सामान्य ज्ञान हो, वरन् केवल यह देखने को कि विद्यार्थियों को जो कि विशेष मत के सदस्य हैं उस मत की शिक्षा दी जाये और व्यवहार के रूप में मैं सभा को यह विश्वास दिला दूं कि यदि यह ''न्यायालय जाने वाले अधिकार'' वहां रहे भी तो इससे कोई अन्तर नहीं होगा। मान लीजिये कि किसी विशेष मत का कोई स्कूल है जहां कि कोई विशेष मत सिखाया जाता है, क्या कोई उस संस्था को अपने विद्यार्थियों को तुलनात्मक

विज्ञान की शिक्षा देने के लिए विवश कर सकता है? सबसे पहले तो उस व्यवस्था में विद्यार्थी विज्ञान को समझ ही नहीं सकते। परन्तु आप उनको विवश भी करें तो स्कूल, शिक्षक और यहां तक कि लेखक भी इस प्रकार की योजना करेंगे कि तुलनात्मक धर्म के अध्ययन करने के अंत में विद्यार्थी इसी परिणाम पर पहुंचेगा कि वही धर्म सबसे अच्छा है। मैं एक प्रत्यक्ष उदाहरण जानता हूं। एक साम्प्रदायिक स्कूल की कक्षाओं में उस सम्प्रदाय की धार्मिक पुस्तक पढ़ाई जाती थी परन्तु इसके साथ-साथ धर्म के तुलनात्मक अध्ययन पर व्याख्यान भी दिये जाते थे। उसके अंत में यह शिक्षा दी जाती थी कि उनका मत सबसे उत्तम है। इस संशोधन से उस परिस्थिति को संभाला नहीं जा सकेगा, वह उसको और भी खराब कर देगा। मैं निवेदन करता हूं कि इस सिद्धांत को वाक्य-खंड की पदावली के अंतर्गत न्यायालय जाने वाले अधिकार के रूप में लाना असंभव है। यदि इस संशोधन को स्वीकार किया जाता है तो इससे बड़ी कठिनाई होगी और यह अप्रयुक्त कानून के समान रहेगा।

इसके बाद मैं श्रीमती रे के संशोधन को लेता हूं। जहां तक उसके प्रथम भाग का सम्बन्ध है अर्थात् ''राज्य द्वारा संचालित स्कूलों में कोई साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी,'' जहां तक संघ का सम्बन्ध है वह पार्थिक तथा प्रजातंत्रात्मक राज्य होगा। जहां तक इकाइयों का सम्बंध है मैं नहीं समझता हूं कि प्रांत धर्माश्रित राज्य ग्रहण करेंगे। परन्तु वर्तमान समय में यह मौलिक अधिकार केवल प्रांतों पर ही प्रभाव नहीं डालेगा वरन् रियासतों पर भी प्रभाव डालेगा। यदि भारतीय रियासतें इसे स्वीकार करती हैं तो यह कठिन विषय है, परन्तु मेरी सम्मति से जब तक इस विषय पर हम सब सर्व-सम्मत न हों तब तक भारत की आधुनिक परिस्थिति में इस सिद्धांत का निर्धारण ठीक नहीं होगा।

दूसरे वाक्य के सम्बन्ध में मैं यह स्वीकार करता हूं कि परामर्शदातृ-समिति द्वारा स्वीकृत वाक्य-खंड की वाक्यशैली में सुधार हुआ है और इस कारण ''सरकारी कोष द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को .....'' मूल वाक्य-खंड में ''संचालित'' शब्द का ''पूर्ण संचालित'' के रूप में बोध होता है। अतः श्रीमती रे का संशोधन इस बात को प्रमाणित करेगा। यदि उसका पूर्ण रूप से संचालन किया जाता है तो वह भिन्न बात है। यह वाक्य-खंड केवल उससे सम्बंध रखता है जो राज्य द्वारा सहायता प्राप्त संस्थायें कही जाती हैं। इसलिये उनके शब्द ''राज्य द्वारा सहायता प्राप्त अथवा संचालित किसी भी स्कूल या शिक्षण संस्थाओं में जाने वाले किसी व्यक्ति को'' एक श्रेष्ठतर

[श्री के.एम. मुंशी]

वाक्यशैली का निर्माण करते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि उनको स्वीकार किया जाये। वह इस प्रकार है: ''सरकारी कोष द्वारा 'संचालित' '' इस शब्द के स्थान में 'प्रमाणित' रख दिया जाये। वह इस प्रकार हो जायेगा: ''सरकारी कोष द्वारा प्रमाणित अथवा सहायता प्राप्त किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को।'' इस प्रकार वह स्वयमेव ही रियासतों की संस्थाओं को अपने विस्तार के बाहर कर देता है जिनकी रियासत द्वारा पूर्ण आर्थिक व्यवस्था की जाती है।

अब ''शिक्षण संस्थाओं'' शब्दों के सम्बंध में मैं निवेदन करता हूं कि वे बहुत अधिक सीमा तक ''स्कूल'' शब्द के अर्थ को बढ़ा देते हैं। यदि इन शब्दों का प्रयोग करने दिया जाये तो उनसे गंभीर कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। धार्मिक शिक्षा देने वाली पाठशालाऐं तथा मदरसे हो सकते हैं। धार्मिक शिक्षा देना उनका प्रमुख उद्देश्य है और वर्तमान समय में हर जगह इनकी राज्य द्वारा सहायता की जाती है। किसी भी ऐसे कठोर मौलिक अधिकार का यह प्रभाव होगा कि ऐसी हजारों शिक्षण संस्थाओं का लोप हो जायेगा।

***श्री के. संतानम:** क्या मैं जान सकता हूं कि इन संस्थाओं का क्यों लोप हो जायेगा?

***श्री के.एम. मुंशी:** बात यह है कि ऐसे स्कूल हैं जो धार्मिक शिक्षा देने के आशय के लिये हैं और उनमें जाने वाले प्रत्येक विधार्थी को धार्मिक शिक्षा दी जाती है। पाठशालायें वास्तव में शिक्षण संस्थायें नहीं हैं। इसलिये ''स्कूल'' शब्द स्पष्ट अर्थ रखता है। वह अर्थ यह है कि स्कूल तथा प्राइमरी और सेंकिंडरी संस्थायें जहां शिक्षा दी जाती है और न कि विशिष्ट प्रकार की शिक्षा। इसलिये मैं निवेदन करता हूं कि वाक्य-खंड 16 जिस रूप में पेश किया गया है, सही विचार का प्रतिपादन करता है यदि दो शब्दों को बदल दिया जाये तो, ''संचालित'' के स्थान में ''प्रमाणित'' और ''पब्लिक फण्ड्स'' के स्थान में ''स्टेट फण्ड्स'' रखें।

***श्री देवीप्रसाद खेतान:** मेरे विचार से ''आउट ऑफ'' को ''बाई'' से बदलना होगा। तब वह इस प्रकार पढ़ा जायेगा: ''नो परसन अटेंडिंग ए स्कूल रिकग्नाइज्ड बाइ दी स्टेट।''

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** श्रीमान् जी, मै श्री मुंशी द्वारा सुझाये गये परिवर्तन को स्वीकार करने के लिये उद्यत हूं कि वाक्य-खंड में ''संचालित'' शब्द के स्थान में हम ''प्रमाणित'' शब्द रखें और ''पब्लिक फण्ड्स'' की जगह हम ''स्टेट फण्ड्स'' रखें।

इस वाक्य-खंड पर विचार करने के सम्बंध में मुझे केवल यह कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह याद रखना चाहिये कि यह न्यायालय जाने वाले अधिकारों में से है और हमें मस्विदा बनाने में तथा वाक्य-खंडों के संशोधन करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह वाक्य-खंड केवल ब्रिटिश भारत के लिये नहीं है, वरन् समस्त भारतीय संघ के लिये है, और इन वाक्य-खंडों के ग्रहण करने में हमें इस बात पर विचार करना है कि वह इस प्रकार का न हो कि बाद में वह मुकदमेबाजी की भरमार कर दे और अनकों कठिनाइयां उत्पन्न कर दे। अतः ये मुख्यतया सामान्य प्रस्ताव होने चाहिये जिनके अंतर्गत विशेष मामले न्यायालय को जायेंगे और इसीलिये इन परिवर्तनों के साथ-साथ जिनको मैं स्वीकार कर रहा हूं, मैं प्रस्ताव को सभा की स्वीकृति के लिये पेश कर रहा हूं।

***डॉ. एस. राधाकृष्णन्** (संयुक्त प्रांतः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं एक स्पष्टीकरण चाहूंगा। क्या यह पद ''प्रमाणित अथवा सहायता प्राप्त'' उन संस्थाओं को शामिल करता है कि नहीं जिनका संचालन, शासन तथा जिन पर व्यय पूर्णतया राज्य द्वारा किया जाता है?

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** वह शामिल करता है।

श्री एच.वी. पातस्करः क्या मैं जान सकता हूं कि क्या यह विचार है कि कालेजों और उच्चतर संस्थाओं को छोड़ दिया जाये, जिनमें कि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य की जा सकती है, अथवा क्या इसका प्रयोग व्यापक रूप में किसी भी शिक्षण संस्था के लिये किया जायेगा?

***अध्यक्षः** श्री पातस्कर जानना चाहते हैं कि ''स्कूल'' शब्द में कालेज शामिल किया जाता है या नहीं?

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** वह कालेजों को शामिल नहीं करता है।

***अध्यक्षः** क्या मैं संशोधन पर वोट लूं? पहला संशोधन श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी का है:

''वाक्यखंड 16 की व्याख्या के रूप में निम्न पैरा जोड़ दिया जाये:

'छात्रों की बुद्धि को परिमार्जित करने के लिये न कि ऐसी बनाने के लिये कि जिसमें साम्प्रदायिक पृथकत्व को प्रोत्साहन मिले, सरकारी सहायता

[अध्यक्ष]

पाने वाले शिक्षणालयों में दी जाने वाली समस्त धार्मिक शिक्षा धर्मों के तुलनात्मक प्राथमिक ज्ञान के रूप में होगी'।''

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** दूसरा संशोधन श्रीमती रेणुका रे का है।

''वाक्य खंड 16 के स्थान में निम्न रखा जाये:

'राज्य द्वारा संचालित स्कूलों में कोई साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। राज्य द्वारा सहायता प्राप्त अथवा प्रमाणित किसी भी स्कूल या शिक्षण संस्थाओं में जाने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी किसी धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा'।''

***श्री के.एम. मुंशीः** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या माननीय प्रस्ताविका महोदया ने ''प्रमाणित'' शब्द को ''संचालित'' शब्द के स्थान में स्वीकार कर लिया है?

***अध्यक्षः** अर्थात् मूल प्रस्ताव में ''राज्य द्वारा संचालित''। मैं समझता हूं उन्होंने स्वीकार कर लिया है।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रांतः जनरल): मैं संशोधन का ठीक अर्थ नहीं समझ सका। क्या भी वल्लभभाई पटेल द्वारा स्वीकृति का यह अर्थ है कि वाक्य-खंड 16 उन स्कूलों के सम्बंध का नहीं है, जिनका राज्य द्वारा संचालन होता है, वरन् केवल उन स्कूलों के लिये है जो राज्य द्वारा प्रमाणित हैं अथवा राज्य-कोष से सहायता पाते हैं?

***अध्यक्षः** श्रीमती रेणुका रे अपना प्रस्ताव वापस लेने के लिये कहती हैं। मैं मूल प्रस्ताव को रखता हूं।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरूः** सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था कि वे श्री मुन्शी द्वारा पेश किये गये संशोधनों को स्वीकार करेंगे और मैं विश्वास

करता हूं कि यदि इन संशोधनों को स्वीकार किया जाता है तो वाक्य-खंड 16 इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> ''राज्य द्वारा प्रमाणित अथवा राजकोष द्वारा सहायता पाने वाले किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जायेगा इत्यादि, इत्यादि।''

क्या यह सही है?

***अध्यक्ष:** मैं उसी प्रस्ताव को, जैसा कि आपने अभी पढ़ा है, सभा के सामने ला रहा हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी:** ''राजकोष'' के स्थान में ''राज्य द्वारा प्रमाणित अथवा सहायता पाने वाले'' श्रेष्ठतर रहेगा, क्योंकि राजकोष द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता। वह केवल मस्विदा बनाने का विषय है।

***अध्यक्ष:** वाक्य इस प्रकार पढ़ा जायेगा: ''राज्य द्वारा प्रमाणित अथवा राजकोष द्वारा सहायता पाने वाले किसी स्कूल में जाने वाले इत्यादि।''

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अर्थात इस वाक्य-खंड के अन्तर्गत उन स्कूलों को नहीं रखा गया है जिनका संचालन राज्य द्वारा होता है। यह एक अनोखी पद-रचना है और मैं चाहूंगा कि इस वाक्य-खंड के अर्थ की स्पष्ट व्याख्या की जाये। यदि सरकार की यह इच्छा है कि राज्य द्वारा साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा राज्य के स्कूलों में दी जाये तो उसको स्पष्ट करना चाहिये, जिससे हम विचार कर सकें और यह निश्चय कर सकें कि हम इस वाक्य-खंड पर किस प्रकार वोट दें।

***अध्यक्ष:** यदि हम निम्न प्रकार से वाक्य-खंड को रखें तो कठिनाई दूर हो जायेगी: ''राज्य द्वारा प्रमाणित अथवा संचालित या राजकोष द्वारा सहायता प्राप्त किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति इत्यादि,'' क्या यह ठीक होगा?

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मेरे ख्याल से इससे कठिनाई दूर हो जायेगी।

***डॉ. एस. राधाकृष्णन्:** यदि राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं में साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा दी जाने लगी तो हमारी उस घोषणा का क्या होगा कि राज्य पार्थिव

[डा. एस. राधाकृष्णन्]

संस्था है जो किसी भी साम्प्रदायिक शिक्षा का प्रचार नहीं करेगी? यह वास्तविक प्रश्न है। हम प्रथम सिद्धान्त पर दृढ़ हैं कि राज्य किसी प्रकार के धर्म से सम्बन्धित नहीं रहेगा तथा धर्म पर निराश्रित संस्था रहेगा। दूसरे शब्दों में हमारा एक अनेकों धर्म वाला राज्य है, अतः हमको निष्पक्ष होना पड़ेगा और विभिन्न धर्मों के साथ समान व्यवहार करना होगा, परन्तु यदि राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं को अथवा राज्य द्वारा शासित, नियंत्रित तथा अर्ध-व्यवस्थित संस्थाओं को साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा देने दिया जाता है, तो हम अपने विधान के प्रथम सिद्धान्त का उल्लंघन कर रहे हैं। दूसरी ओर यदि हम यह कहते हैं कि सहायता प्राप्त संस्थायें धार्मिक शिक्षा दे सकती हैं तो वहां हम यह कहकर धार्मिक चैतन्यता के उल्लंघन के विरुद्ध जनता के हितों की रक्षा करते हैं कि उनकी इच्छा के विरुद्ध धार्मिक कक्षाओं में उपस्थित होने के लिये उनको बाध्य नहीं किया जायेगा। अतः राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं तथा राजकोष द्वारा केवल सहायता पाने वाली संस्थाओं में आपको कुछ अन्तर रखना पड़ेगा। जहां तक सरकारी संस्थाओं का सम्बन्ध है हम साम्प्रदायिक ढंग की किसी धार्मिक शिक्षा देने की आज्ञा नहीं दे सकते हैं। जहां तक दूसरी प्रकार की संस्थाओं का सम्बन्ध है आप आज्ञा दे सकते हैं, बशर्ते कि आप सम्बन्धित अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा कर सकें तो इस विषय को हमें स्वयं पूर्ण स्पष्ट कर देना है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** श्रीमान् जी, कुछ गड़बडी है। जहां तक राज्य द्वारा पूर्णतया संचालित किसी स्कूल से सम्बन्ध है हम उन मौलिक अधिकारों को लागू करके कुछ नहीं कर सकते हैं जिनके लिये न्यायालय ले जाने का इलाज बता दिया है। क्योंकि यह केवल ब्रिटिश भारत तक ही सीमित नहीं है, यह समस्त भारत अर्थात् भारतीय संघ को लेता है। अतः कोई प्रादेशिक इकाई जो कि रियासत है, हैदराबाद का उदाहरण ले लीजिये, पूर्णतया अपना स्कूल संचालन करना चाहती है जिसमें वह धार्मिक शिक्षा रखना चाहती है, वह बाध्य कर सकती है, परंतु हम उसका यह इलाज नहीं कर सकते जिसके द्वारा कोई व्यक्ति न्यायालय जा सके और कहे ''आप यहां धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकते हैं''। मैं समझता हूं कि इस अवस्था में अभी यह उचित नहीं है। इसलिये राजकोष द्वारा प्रमाणित अथवा सहायता प्राप्त शब्द रखे गये हैं।

***श्री एम.एस. अणेः** श्रीमान् जी, मेरा एक संदेह है। ''राज्य'' शब्द का अर्थ केवल संघ से ही है या प्रादेशिक इकाइयों से भी है?

***अध्यक्षः** वे जानना चाहते हैं कि ''राज्य'' में प्रादेशिक इकाइयां निहित हैं अथवा नहीं?

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** ''राज्य'' में प्रादेशिक इकाइयां निहित हैं।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** सूचना प्राप्त करने के आशय से श्रीमान् जी, मैं यह जानना चाहूंगा कि शब्द ''प्रमाणित तथा सहायता प्राप्त'' हैं या ''प्रमाणित अथवा सहायता प्राप्त'' हैं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** ''अथवा'' शब्द वहां है।

***अध्यक्षः** राज्य द्वारा प्रमाणित अथवा राज्य-कोष द्वारा सहायता पाने वाले। यह या वह?

***श्री आर.वी. धुलेकरः** यदि ''अथवा'' शब्द है तो इसका आशय यह हुआ कि साम्प्रदायिक संस्थायें जो कि गैर सरकारी कोष द्वारा पूर्ण रूप से संचालित की जाती हैं उनको सरकार द्वारा बिल्कुल ही प्रमाणित नहीं किया जायेगा। इसलिये ''अथवा'' शब्द वहां नहीं होना चाहिये। वहां ''तथा'' होना चाहिये। उनको सरकार द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिये तथा आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये। यदि वे आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं तो यह नियम लागू होगा। यदि उनका गैर सरकारी कोष द्वारा संचालन किया जाता है तो....

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** यदि उनका गैर सरकारी कोष द्वारा संचालन होता है और यदि उनको राज्य द्वारा प्रमाणित किया गया है तो आप विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये बाध्य नहीं कर सकते हैं।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रासः जनरल): श्रीमान् जी, क्या मैं एक कठिनाई बता सकता हूं?

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** कठिनाइयों का अन्त नहीं होगा।

***डॉ. बी. पट्टाभि सीमारमैयाः** यदि आप इसको अस्पष्ट रीति से पास करना चाहते हैं तो कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं प्रत्यक्ष प्रयोजन की हानि देखता हूं जिसके लिये संशोधन पेश किया गया है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है।

***अध्यक्षः** श्री मुंशी का संशोधन वादविवाद के अन्तर्गत रखा गया था और उसके लिये उचित रूप से सूचना नहीं दी गई थी। इसलिये यह प्रश्न उठा है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** क्या कठिनाई है?

***डॉ. बी. पट्टाभि सीतारमैयाः** प्रान्तों अथवा राज्यों में ऐसी कुछ संस्थायें हैं जिनका कुछ दानशील व्यक्ति पूर्ण संचालन करते हैं और वे विद्यार्थियों को कोई धार्मिक शिक्षा देना चाहेंगे। हम उनको (विद्यार्थियों को) स्वतंत्र रखना चाहते हैं। यह सब ठीक है। उद्देश्य यह है कि किसी राजा, रियासत या राज्य से असम्बन्धित गैर सरकारी कोष द्वारा संचालित संस्थाओं की श्रेणी को पृथक रखा जाये। बहुत अच्छा, आपने उनको पृथक कर दिया। अब आपने संस्थाओं की दो श्रेणियां मानी। एक वह जो राज्य द्वारा अप्रमाणित है पर सहायता पाती है; इसके लिये मेरा तर्क नहीं है। लेकिन जब आप यह कहते हैं कि राज्य द्वारा प्रमाणित अथवा सहायता पाने वाले, तो आपने दो प्रकार की संस्थायें मान ली हैं। एक वे हैं जो राज्य द्वारा प्रमाणित हैं। राज्य द्वारा संचालित संस्था प्रामाणिक संस्था है और इस प्रकार वे शामिल हो जाती हैं जबकि उनको पृथक करने का आशय था। फिर तो अनिवार्यता का अधिकार छिन जाता है और वह स्वतंत्रता जो हमने दी है रहती ही नहीं, क्योंकि राज्य द्वारा संचालित संस्था भी प्रमाणित है। जिस समय वह राज्य द्वारा प्रमाणित की जाती है उसी समय जो स्वतंत्रता आपने राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं को दी है, वह छिन जाती है। अतः यदि आप राज्य की संस्थाओं की स्वतंत्रता की पुष्टि करना तथा उसे प्रमाणित करना चाहते हैं तो आपको यह कहना चाहिये कि ''राज्य द्वारा प्रमाणित तथा सहायता पाने वाले।'' इससे केवल एक श्रेणी ही रहती है। अन्यथा ''अथवा'' शब्द से प्रयुक्त भाषा में वे संस्थायें आ जाती हैं जिनको आपने पृथक कर दिया है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति यह निर्णय करने के लिये, कि इसका क्या अर्थ है, थोड़ा समय ले।

***डॉ. मोहनसिंह मेहता** (उदयपुर): श्रीमान् जी, मुझे बड़ी खुशी हुई जबकि माननीय पंडित कुंजरू ने उस प्रश्न को उठाया। जो व्याख्या की गई है उससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि जो कुछ हमने समझा वह आशय वास्तव में नहीं था। हमसे अब यह कहा गया है कि रियासत द्वारा संचालित संस्थाओं में धार्मिक

शिक्षा अनिवार्य हो सकती हैं। श्रीमान् जी, यह एक ऐसी स्थिति है जिसके बारे में इस सभा में कुछ लोगों के मनों में कटु भाव उत्पन्न हुये हैं और चूंकि विषय स्पष्ट नहीं है, मैं दृढ़तापूर्वक आग्रह करूंगा कि यह समिति को वापस कर दिया जाये। यदि आप श्रीमती रेणुका रे का प्रथम वाक्य स्वीकार कर लें और मूल प्रस्ताव का शेष उसके साथ रखें तो वह ठीक होगा और तब वह मेरे मित्र प्रोफेसर राधाकृष्णन् द्वारा रखे गये प्रश्न के अनुरूप होगा।

***श्री के.एम. मुन्शी:** क्या हम फिर उसी बात पर वाद-विवाद कर रहे हैं? मैं समझता हूं कि हमने उसे स्वीकार कर लिया है।

***अध्यक्ष:** कठिनाई यह है कि आपने वाद-विवाद के अन्तर्गत कुछ शब्दों को रखा जिसकी सदस्यों को कोई सूचना नहीं दी थी। प्रस्तावक महोदय ने उनको स्वीकार कर लिया और इसलिये कठिनाई उपस्थित हो गई।

***डॉ. मोहनसिंह मेहता:** यह विषय बड़ा महत्वपूर्ण है। कठिनाई बहुत वास्तविक है और मैं चाहता हूं कि प्रस्ताव पर हमारा मत लेने के पूर्व इसको स्पष्ट कर दिया जाये। मैं सभा को यह स्मरण करा दूं कि इस विषय पर शिक्षा विभाग के केन्द्रीय परामर्शदातृ बोर्ड के दो अधिवेशनों में वाद-विवाद हो चुका है और यह ऐसा विषय नहीं है कि जिस पर साधारण विचार किया जाये।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान जी, क्या मैं डॉ. मोहनसिंह मेहता के सुझाव का जोरदार समर्थन कर संकता हूं? विषय के महत्वपूर्ण होने के विचार से यह वांछनीय है कि इस वाक्य-खण्ड को परामर्शदातृ समिति को वापस कर दिया जाये। मैं इस विषय पर विस्तृत रूप से बात करना नहीं चाहता हूं लेकिन यह बताने के लिये कि यह एक बहुत बड़े महत्व का प्रश्न है, मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि हम रियासत को किसी स्कूल में धार्मिक शिक्षा देने देते हैं तो इसका आशय यह है कि हम राज-धर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तथा यह कि प्रमाणित धर्म के समान कोई वस्तु होगी। श्रीमान जी, जहां तक मुझे याद है कि उन समस्त वर्षों में जिनमें कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिये संघर्ष होता रहा, हमने लौकिक राज्य का सिद्धान्त माना। भारतीय जनमत के नेताओं की आरम्भ की पीढ़ी ने वास्तव में आयरलैंड के प्रोटेस्टेंट चर्चों के मिटाने के साधनों का स्वागत किया। तो फिर अपने पूर्व सिद्धान्तों के तदनुरूप हम किस प्रकार इस दशा को ग्रहण कर सकते हैं जिसमें रियासत धार्मिक शिक्षा दे सके और इस प्रकार

[माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू]

राज-धर्म माने जिसकी उसे सब धर्मों से अधिक रक्षा करनी पड़ेगी? इसलिये श्रीमान् जी, मैं श्री मोहनसिंह मेहता के सुझाव का जोरदार समर्थन करता हूं और मैं आशा करता हूं कि सरदार वल्लभभाई पटेल को इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

ऐसे बहुत से विषय हैं जिन पर अभी तक सभा द्वारा निर्णय नहीं किया गया है। बिल में उनके सम्बन्ध की व्यवस्थायें रखी जायेंगी, वह (बिल) हमारे सामने आयेगा और उस समय हमें उन पर निर्णय करने का अवसर मिलेगा। यदि हम एक और विषय को बाद में वाद-विवाद करने तथा उस पर निर्णय करने के लिये छोड़ दें तो कोई हानि नहीं होगी। प्रश्न के प्रमुख रूप के विचार से जो कि रखा जा चुका है मेरी समझ में यह नितान्त आवश्यक है कि हम उसे जल्दी में आज तय न करें। यदि हम मौलिक सिद्धान्तों का कुछ भी सम्मान करना चाहते हैं तो हमें इसे परामर्शदातृ समिति को वापस कर देना चाहिये।

***श्री के.एम. मुंशी:** श्रीमान् जी, यह मान लेना सही नहीं है कि परामर्श दातृ समिति अथवा मूल मौलिक-अधिकार-समिति द्वारा इस विषय पर विचार नहीं किया गया। दो बातें भिन्न-भिन्न हैं। एक बात यह है कि राज्य द्वारा प्रमाणित कोई भी स्कूल ऐसा न हो जिसमें छात्रों को धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के लिये बाध्य किया जाये चाहे उसे (स्कूल को) राज्य द्वारा सहायता मिलती हो अथवा नहीं। यह एक बात है जो इसमें निहित है। ''संचालित'' शब्द के स्थान में ''प्रमाणित'' रखने का कारण यह है कि ऐसे बहुत-से-स्कूल हैं जिनको राज्य द्वारा सहायता नहीं दी जाती है लेकिन फिर भी वे प्रमाणित स्कूल हैं। मैं जानता हूं कि मेरे देश में अनेकों प्रमाणित स्कूल हैं जो कि अनेकों परीक्षाओं के लिये विद्यार्थी भेजते हैं, परन्तु उन्हें राज्य से कुछ भी सहायता नहीं मिलती, लेकिन वे स्कूल तो हैं ही। ''संचालित'' शब्द के स्थान में ''प्रमाणित'' रखने से उद्देश्य यही था कि ऐसे सब स्कूलों को ले लिया जाये जो कि राज्य द्वारा प्रमाणित हैं चाहे उनको राज्य से सहायता मिलती हो या नहीं। जहां तक इन स्कूलों से सम्बन्ध है बात बिल्कुल साधारण है कि वे किसी विद्यार्थी को उसकी इच्छा के विरुद्ध धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये विवश नहीं करेंगे। दूसरी बात जो कि बिल्कुल ही भिन्न है, और जिसका इस वाक्य-खंड से कोई भी सम्बन्ध नहीं है वह है जो कि श्रीमती रेणुका रे के वाक्य में दी गई है कि राज्य द्वारा नियंत्रित, अपनाये हुये तथा संचालित स्कूल में धार्मिक शिक्षा नहीं होगी। ये दो पूर्णतया भिन्न-भिन्न बातें हैं।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** क्या मैं अपने माननीय मित्र को यह संकेत करूं कि सरदार पटेल ने यह कहा था कि यह वाक्य-खंड जिस रूप में है, दोनों श्रेणियों को शामिल करता है।

***श्री के.एम. मुंशी:** परन्तु धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार करने के लिये नहीं। यह केवल विद्यार्थी या उसके माता-पिता के यह कहने के अधिकार को प्रमाणित करता है: ''मेरे लड़के को किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी।'' यह केवल उसका एक भाग है। दूसरा भाग बिल्कुल ही भिन्न है। हम दोनों को मिलायें नहीं। राज्य द्वारा संचालित तथा अपनाया हुआ स्कूल विचारपूर्वक धार्मिक शिक्षा दे या न दे; यह बिल्कुल ही भिन्न विषय है।

इस वाक्य-खंड का पूरा उद्देश्य यह नहीं है कि राज्य को धार्मिक स्कूलों के चलाने से रोके, परन्तु इस बात पर जोर देने से है कि प्रत्येक विद्यार्थी को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये विवश किया जायेगा। यह विषय बार-बार आया और समिति ने सदा यही निर्णय किया कि मौलिक अधिकारों में विरोधमूलक बात को न रखा जाये। यदि विरोधमूलक बात सभा के समक्ष लाई जाती है तो उस पर किसी और समय वाद-विवाद हो सकता है। परन्तु जहां तक इस बात का सम्बन्ध है यह वैसी की वैसी ही है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास: जनरल): राज्य अपनी संस्थाओं को प्रमाणित नहीं करता है। प्रमाणित का विशेष अर्थ है।

***श्री के.एम. मुंशी:** यदि कोई स्कूल किसी संस्था का संचालन करता है और यदि आप उसमें धार्मिक शिक्षा का निषेध करना चाहते हैं तो यह एक पूर्ण स्वतंत्र विषय है। यह इस वाक्य-खंड के अन्तर्गत नहीं आता। यह वाक्य-खंड केवल उन स्कूलों को लेता है जो कि प्रमाणित हैं और जिनको राज्य से सहायता मिलती है। मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता कि जब तक दूसरे भाग पर निर्णय न हो इस भाग को स्थगित रखा जाये। इस दूसरे भाग पर बार-बार वाद-विवाद हुआ और समितियों ने इसे नियम-विरुद्ध घोषित किया। यह कहना सही नहीं है कि न तो मौलिक अधिकार समिति और न परामर्शदातृ समिति ने इस पर विचार किया।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): इन कठिनाइयों पर विचार करते हुये, जो कि उत्पन्न हो गई हैं और जो कि वास्तविक हैं, यह आवश्यक

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

है कि इस वाक्य-खण्ड पर और विचार किया जाये। जिस प्रकार से मैं विषय को रखता हूं वह यह है। आपके यहां तीन प्रकार की संस्थायें हैं। पहली वे हैं जो राज्य द्वारा संचालित हैं; दूसरी राज्य द्वारा प्रमाणित; तीसरी राज्य द्वारा सहायता पाने वाली। इस विषय पर समिति ने सामान्य रूप से विचार किया हो और मेरे मित्र श्री मुंशी बिल्कुल ठीक कहते हैं, परन्तु मैं तो व्यक्तिगत रूप से इस तर्क से प्रभावित हुआ हूं कि राज्य के पार्थिव संस्था होने के कारण इस बात के लिये अधिक शक्तिशाली तर्क हैं कि राज्य द्वारा पूर्णतया संचालित संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा क्यों नहीं दी जाये जबकि वह प्रमाणित या कुछ सहायता प्राप्त स्कूलों में दी जाती है। भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में कठिनाइयां बताई गई हैं। यदि रियासत किसी विशेष प्रयोजन के लिये किसी संस्था का संचालन करता है तो आप अपवाद कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिये या किसी विशेष वर्ग के पंडितों को शिक्षा देने के लिये या इसी प्रकार से अन्य शिक्षा के लिये। परन्तु सामान्यतया राज्य द्वारा संचालित संस्था का आधार अपेक्षाकृत राज्य द्वारा प्रमाणित संस्था अथवा राज्य द्वारा सहायता प्राप्त संस्था से श्रेष्ठतर होना चाहिये। अत: मैं विचार करता हूं कि समस्त विषय पर उन सुझावों के आधार पर जो कि सभा में रखे गये हैं, फिर से विचार किया जाये बनिस्बत इसके कि एक बात को स्वीकार किया जाये, दूसरी बात विचाराधीन रखी जाये और किसी बात को परामर्शदातृ-समिति के पास भेजा जाये।

जो कुछ श्री मुंशी ने कहा उससे भिन्न कथन से मेरा आशय नहीं है, परन्तु कुछ बातें यहां पैदा हो गई हैं। हम उन पर विचार करें, वे महत्वपूर्ण बातें हैं और मैं समझता हूं कि उन पर फिर विचार करने के लिये परामर्शदातृ-समिति को या उस समिति को जो मसविदे के पुनरावलोकन के लिये बनाई गई है, दे दिया जाये और वह यह देखे कि इन विभिन्न वर्गों को समान रूप में लाना सम्भव हो सकता है या नहीं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** ये कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं जबकि अन्तिम समय में कुछ सुझावों को स्वीकार करने के लिये दबाव डाला जाता है और फिर बाद में वे ही जो कि सुझाव रखते हैं यह कह देते हैं, ''हमारा आशय यह नहीं था''। इस विषय पर सभा में वाद-विवाद हुआ और वाक्य-खंड परामर्शदातृ-समिति को वापस कर दिया गया। परामर्शदातृ-समिति ने इसके समस्त पहलुओं पर विचार किया और उसको यहां रखा। फिर अन्तिम समय इन परिवर्तनों

पर जोर दिया गया। हमने कहा: ''बहुत अच्छा यदि आप इनको अच्छा समझते हैं तो हम उन्हें स्वीकार करते हैं।'' परामर्शदातृ-समिति के पास भेजने के अलावा यह अधिक उपयुक्त होगा कि इसे दो या तीन व्यक्तियों की समिति के पास भेजा जाये। मेरा सुझाव यह है कि इस छोटे से विषय को पूरी परामर्शदातृ-समिति के पास भेजने के अलावा एक छोटी कमेटी के पास भेज दिया जाये और यदि वे कुछ सुझाव रखते हैं तो उनको यहां अगले अधिवेशन में लाया जा सकता है। मैं समझता हूं कि तीसरी बार परामर्शदातृ-समिति के पास भेजना लाभप्रद नहीं है।

***श्री के. सन्तानम्:** हम उस पर शुरू से विचार नहीं करेंगे। उसको मस्विदा बनाने वाली समिति के पास भेज दिया जाये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** यह अच्छा है।

***अध्यक्ष:** क्या सभा इसे मस्विदा बनाने वाली समिति के पास भेजना चाहती है?

***माननीय सदस्यगण:** जी, हां।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार: मुस्लिम): मस्विदा बनाने वाली समिति केवल मस्विदा बनायेगी। हमको सिद्धान्त तय कर लेना चाहिये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल:** सभा इस बात पर वाद-विवाद नहीं कर सकती है कि मस्विदा बनाने वाली समिति क्या करेगी।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्री पटेल का सुझाव श्रेष्ठतर है। हम इसे एक छोटी समिति के पास भेजें जो अपनी सिफारिशें मस्विदा बनाने वाली समिति के पास भेज सकती है। मैं समझता हूं कि यह सभा के सब सदस्यों के विचारों की पूर्ति करेगा।

***माननीय श्री हुसैन इमाम** (बिहार: मुस्लिम): अध्यक्ष द्वारा नियुक्त की गई समिति ठीक रहेगी। वे अपनी सिफारिश मस्विदा बनाने वाली समिति को भेज देंगे।

***अध्यक्षः** यदि सभा की यही इच्छा है तो मुझे कोई चिन्ता नहीं।

(हिन्दी बोलने वाले सदस्य द्वारा बाधा)

मस्विदा बनाने वाली समिति के सदस्य यहां हैं और उन्होंने वाद-विवाद भी सुना है तथा उन्हें इस डिबेट की रिपोर्ट भी मिलेगी। मुझे विश्वास है कि वे सब बातों पर विचार करेंगे और तब उन सब कठिनाइयों को दूर करते हुये जिनको यहां बताया गया है, वे मस्विदा बनायेंगे।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरूः** श्री पटेल द्वारा दिये गये सुझाव में क्या कोई वास्तविक कठिनाई है?

***अध्यक्षः** सभा ने उसे स्वीकार कर लिया है।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मैं समझता हूं कि यदि सरदार पटेल उसे जोरदार ढंग से रखते हैं तो सभा उसे स्वीकार कर लेगी।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि उनके लिये ऐसा करना आवश्यक है। यदि सभा उसे स्वीकार करती है तो उसे मैं स्वीकार करूंगा।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरूः** सरदार वल्लभभाई पटेल को उसे जोरदार ढंग के साथ रखने दीजिये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** यदि आपकी नियुक्त की गई समिति को यह भेजा जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है और वह समिति उसे मस्विदा बनाने वाली समिति के पास भेज सकती है।

***अध्यक्षः** मैं चार या पांच सदस्य नामजद कर दूंगा जो कि इस विषय में वास्तविक रुचि रखते हो और वे अपनी सिफारिश मस्विदा बनाने वाली समिति को भेज सकते हैं।

***एक माननीय सदस्यः** वह सभा में आना चाहिये।

***अध्यक्षः** केवल अन्तिम रिपोर्ट सभा में आयेगी।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** एक-दो बातें हैं जिनके स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यदि अगले मद को लेना आवश्यक नहीं है तो हम इन एक या दो विषयों पर वाद-विवाद कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** मैं नहीं जानता हूं कि ये विषय क्या हैं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** उन पर अगले अधिवेशन के पूर्व वाद-विवाद किया जा सकता है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** उदाहरण के लिये हमें अगले अधिवेशन का समय नियत करना है तथा अन्य बातें हैं। यह अधिक समय नहीं लेगा।

वाक्य-खंड 17

***अध्यक्षः** ''दबाव या अनुचित प्रभाव द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन करना कानून द्वारा प्रमाणित नहीं किया जायेगा।''

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** कमेटी ने इस पर वाद-विवाद किया और सभा द्वारा अनेकों अन्य सुझाव रखे गये थे और वाक्य-खंड को समिति के पास वापस भेज दिया गया। इस वाक्य खंड पर, जो कि प्रत्यक्ष सिद्धान्त की व्याख्या करता है, आगे विचार करने पर समिति इस परिणाम पर पहुंची कि इसको मौलिक अधिकार के रूप में शामिल करना आवश्यक नहीं है। वर्तमान कानून के भी यह विरुद्ध है तथा किसी समय भी यह कानून के विरुद्ध हो सकता है।

***अध्यक्षः** क्या किसी व्यक्ति को कुछ कहना है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रासः जनरल): यह दुर्भाग्य की बात है कि धर्म का प्रयोग किसी व्यक्ति की आत्मा की रक्षा करने के लिये नहीं किया जाता है, बल्कि समाज को अनेक दलों में विभक्त करने के लिये किया जाता है। अभी हाल में मंत्रिमंडल की घोषणा के पश्चात् और उसके बाद ब्रिटिश सरकार की घोषणा के पश्चात् अनेकों व्यक्तियों का धर्म-परिवर्तन हुआ। यह कहा गया था कि प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दे दिये गये हैं जिनके हवाले ये विषय

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

थे। यह संकटप्रद है। पार्थिव राज्य से धर्म का क्या सम्बन्ध है? हमारे अल्पसंख्यक साम्प्रदायिक अल्पसंख्यक हैं जिनके लिये हमने व्यवस्थायें बना दी हैं। क्या आप व्यवस्थापिकाओं में अधिक स्थान प्राप्त करने के लिये संख्या बढ़ाने का अवसर देना चाहते हैं? यही हो रहा है। सब लोगों की यही राय हुई है कि यहां पार्थिव राज्य होना चाहिये, इसलिये हमें एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय में परिवर्तन नहीं होने देना चाहिये। मैं इसलिये चाहता हूं कि एक निश्चित मौलिंक अधिकार स्थापित किया जाये कि परिवर्तन नहीं होने दिया जायेगा और यदि इस प्रकार का अवसर उपस्थित हो ही जाये तो उस व्यक्ति को न्यायाधीश के समक्ष होने दीजिये और यह शपथ लेने दीजिये कि वह धर्म-परिवर्तन करना चाहता है। यह एक विषय से परे सुझाव है पर मैं सभा से यह अपील करूंगा कि वह इसके संकटप्रद परिणामों पर विचार करे। बाद में यह बड़ा रूप धारण कर सकता है। मैं चाहूंगा कि इस विषय पर विचार हो और इस प्रश्न को अन्तिम मस्विदे के लिये बाद की बैठकों में विचार करने के लिये वापस किया जाये।

श्री आर.वी. धुलेकरः सभापति जी, मेरी राय यह है कि जैसा इसमें क्लाज 17 रखा गया है वह रहना चाहिये। वर्तमान परिस्थिति में हर प्रकार की कोशिश इस बात की हो रही है कि किसी न किसी तरह से दुबारा इस मुल्क की आबादी को खासतौर से एक पक्ष में बढ़ाया जाये। ताकि फिर इस बात की कोशिश की जाये कि इस मुल्क को दुबारा बांटा जाये। इस भवन में और बाहर इस बात का सबूत मिलता है कि जो लोग यहां पर और इस देश में रहते हैं वह इस देश के बाशिन्दे बनने के लिये तैयार नहीं हैं। जिन लोगों के कारण हमारे देश के टुकड़े हुये हैं अब वह फिर यह चाहते हैं कि इस हिन्दुस्तान के और टुकड़े हो जायें। इसलिये मैं समझता हूं कि वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुये इस धारा को रहने दिया जाये।

बल्कि आवश्यकता इस बात की है और मैं रोजाना सफर करने पर देखता हूं कि स्टेशनों पर, दुकानों पर, होटलों पर और नानबाइयों पर और सैकड़ों स्थानों पर शरणार्थी अपने बच्चों को लेकर इधर-उधर जाते हैं। मगर इन नानबाइयों के आदमी इन स्त्री और बच्चों को बहका ले जाते हैं। इस चीज को रोकने के लिये कानून बनाना चाहिये ताकि उन लोगों को रोका जाये। मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि इस चीज़ के लिये जल्द कदम उठाना चाहिये और लाखों आदमियों को बचाना चाहिये।

मैं समझता हूं कि अब हम इस प्रकार की बातों को नहीं सह सकते हैं। हम पर आक्रमण हो रहे हैं। हम नहीं चाहते हैं कि धीरे-धीरे भारतवर्ष की संख्या

हिन्दूओं की संख्या और दूसरे समाज की संख्या रोजाना कम होती रहे और दस वर्ष के बाद वह यह कहें कि हम तो अलग राष्ट्र हैं। यह अलग-अलग की भावना को हमको कुचल देना चाहिये।

इसलिये मैं प्रार्थना करता हूं कि 16वीं धारा, जैसी एडवाइजरी कमेटी ने रखी है, वह उसमें वैसी ही रखी जाये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** इस वाद-विवाद को बहुत कम किया जा सकता है; यदि यह मान लिया जाये कि इस बात के औचित्य पर कोई मतभेद नहीं है कि जबरदस्ती किया गया धर्म-परिवर्तन कानून द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। इस सिद्धांत पर कोई मतभेद नहीं है। प्रश्न केवल यही है कि क्या इस वाक्य-खंड को मौलिक अधिकारों की सूची में रखना आवश्यक है। यदि शासन के अमल में लाने के लिये यह उद्देश्यमूलक है तो इसका स्थान दूसरे भाग में है जो कि न्यायालय न जाने वाले अधिकारों का है। यदि आप इसे आवश्यक समझते हैं तो हम इसे परिशिष्ट के दूसरे भाग में हस्तान्तरित करें क्योंकि यह स्वीकार किया गया है कि देश के कानून में जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन कानून के विरुद्ध है। हमने जबरदस्ती शिक्षा देने को भी बन्द कर दिया है और हम कभी भी यह सुझाव नहीं रख रहे हैं कि जबरदस्ती किसी व्यक्ति का अन्य व्यक्ति द्वारा धर्म-परिवर्तन करना प्रमाणित किया जायेगा। लेकिन मान लीजिये कि एक हजार व्यक्तियों का धर्म-परिवर्तन किया जाता है तो इसे नहीं प्रमाणित किया जा सकता है। क्या आप कानून की शरण लेंगे और यह निवेदन करेंगे कि इसे स्वीकार नहीं किया जाये? यह केवल पेचीदगियां पैदा करेगा यह कोई हल उपस्थित नहीं करेगा। परन्तु यदि आप यह चाहते हैं कि दूसरे परिशिष्ट में छटे वाक्य-खंड के पश्चात् इसे सातवें वाक्य-खंड के रूप में रखा जाये तो किसी भी वाद-विवाद का करना अनावश्यक है, आप ऐसा कर सकते हैं। विषय के औचित्य पर कोई मतभेद नहीं है। पर इस दशा में जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन के औचित्य की बात करना मूर्खतापूर्ण है, इसका कोई प्रश्न ही नहीं होता।

श्री आर.वी धुलेकरः मैं मंजूर करता हूं, वहां भेज दिया जाये।

माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः वहां भेज देंगे।

(मि. हुसैन इमाम बोलने के लिये मंच के निकट आये।)

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** क्या आप बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन के पक्ष में हैं?

***माननीय श्री हुसैन इमामः** जी, हां। श्रीमान् जी, मैं कुछ सदस्यों के ढंग पर खेद प्रकट करता हूं जो बिना किसी तुक या तर्क के विवादास्पद विषय रखने के आदी हैं। वह वास्तव में एक व्यर्थ-सा हमला था जो कि पूर्व वक्ता ने बिना नाम बताये मुसलमानों पर किया। मुझे खेद है कि ऐसे वातावरण में जबकि हम मेल करने का प्रयत्न कर रहे हैं, इस प्रकार की बातें कहने देना उस सुन्दर वातावरण में रुकावट तथा हस्तक्षेप करना है।

श्रीमान् जी, जो कुछ मैं निवेदन करने आया हूं वह यह है कि यह ऐसी मौलिक वस्तु है कि इसकी व्यवस्था करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कानून के अनुसार दबाव द्वारा किया गया कोई कार्य नाजायेज है। धोखे के आधार पर किया गया कोई कार्य टिक नहीं सकता है। बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन करना उच्चतम कोटि का अवांछनीय कार्य है। परन्तु न्यायालय जाने वाले मौलिक अधिकारों में इसकी व्यवस्था करना ठीक नहीं है, जैसा कि सरदार साहब ने स्वयं ही स्वीकार किया है। उसके लिये स्थान, जिसे वह ग्रहण कर सकता है, केवल हाईकोर्ट के इतिहास में है। अनेकों फैसले मौजूद हैं जिनमें यह दिया हुआ है कि धोखे या दबाव के आधार पर किया गया कोई भी काम नाजायेज है। अतः यह न्यायालय जाने योग्य नहीं है और संचार में कोई भी समझदार व्यक्ति इसे ठीक नहीं बता सकता। मैं जोरदार ढंग के साथ यह पक्ष ग्रहण करता हूं कि मौलिक अधिकारों की किसी भी सूची में इसे रखने की आवश्यकता नहीं है।

श्री आर.वी. धुलेकरः मैं पूछना चाहता हूं कि क्या कोई व्याख्यान देने से मुसलमान हुआ है?

***अध्यक्षः** तो मैं इस प्रस्ताव को रखूंगा किः

''इसको मौलिक अधिकारों में रखा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

वाक्य-खंड 18

***अध्यक्षः** अब हम वाक्य-खंड 18(2) पर आते हैं।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** यह अन्तिम वाक्य है कि;

''धर्म, जाति या भाषा में से किसी आधार पर आश्रित किसी अल्पसंख्यक को सरकारी शिक्षणालयों में दाखिल होने के विरुद्ध कोई भेद नहीं बरता

जायेगा और न उनको किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी।''

यह वाक्य-खंड समिति को वापस सुपुर्द किया गया था और वह इस परिणाम पर पहुंची कि अन्तिम वाक्य अर्थात् ''और न उनको किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी'' आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह वाक्य-खंड 16 में पहले ही आ जाता है जिसको हमने स्वीकार कर लिया है। उसको हटा देने पर, मैं बिना उस विशेष वाक्य के शेष को सभा की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहीम साहब बहादुर** (मद्रास: मुस्लिम): श्रीमान् जी, मैं पेश करता हूं कि वाक्य खंड 18(2) में ''शिक्षणालयों'' शब्द के पश्चात् निम्न बढ़ा दिया जाये:

''बशर्ते कि यह वाक्य-खंड उन सरकारी शिक्षणालयों में लागू नहीं होगा जो खासकर जनता के किसी विशेष सम्प्रदाय या वर्ग के लाभ के लिये संचालित किये जाते हैं।''

श्रीमान् जी, यह भली प्रकार विदित है कि राज्य द्वारा संचालित ऐसी कुछ संस्थायें हैं, जो कि विशेषतया कुछ सम्प्रदायों के लाभों के लिये हैं, जो शिक्षा में पिछड़े हुये हैं और यदि इस वाक्य-खंड को ऐसी संस्थाओं पर भी लागू किया जाता है तो ऐसी संस्थाओं के स्थापित करने के मूल उद्देश्य में क्षति होगी। इसलिये इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं के, जो खासकर किसी विशेष सम्प्रदाय के लाभ के लिये हैं, स्थापित करने तथा संचालित करने के उद्देश्य में क्षति न हो, यह वाक्य-खंड उन पर लागू न किया जाये। यह बहुत साधारण प्रस्ताव है और मुझे आशा है कि सभा इसे स्वीकार करेगी।

***श्री मोहनलाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त जनरल): श्रीमान् जी, मैं पेश करता हूं कि निम्न व्यवस्था वाक्य-खण्ड 18(2) में बढ़ा दी जाये:

''बशर्ते कि धार्मिक शिक्षा देने वाली संस्थाओं को कोई सरकारी सहायता नहीं दी जायेगी जब तक कि इन संस्थाओं का पाठ्यक्रम राज्य द्वारा उचित रूप से स्वीकृत नहीं किया जाये।''

[श्री मोहनलाल सक्सेना]

मैं कोई लम्बा वक्तव्य देना नहीं चाहता हूं। यह प्रत्यक्ष है कि यदि कोई संस्था धार्मिक शिक्षा देना चाहती है और सरकारी सहायता प्राप्त करना चाहती है तो यह आवश्यक है कि धार्मिक शिक्षा का पाठ्यक्रम राज्य द्वारा स्वीकृत किया जाये, अन्यथा उसकी सहायता बन्द कर दी जायेगी। हम जानते हैं कि धर्म के नाम पर अनेकों प्रकार की शिक्षायें दी जाती हैं और चूंकि शिशु राष्ट्र की सम्पत्ति हैं, यह आवश्यक है कि सहायता देने के पूर्व राज्य कम से कम धार्मिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की स्वीकृति तो करे जो कि उन सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं में नियत किया जाता है और जिसके अनुसार शिक्षा दी जाती है। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव रखता हूं।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी:** मेरा संशोधन वाक्य-खंड 18(2) पर है। वह इस प्रकार है कि:

'''सरकारी' शब्द के पश्चात् 'तथा सरकारी सहायता प्राप्त' जोड़ दिया जाये।''

संशोधन का आशय यह है कि सम्प्रदाय या जाति किसी पर आश्रित किसी अल्पसंख्यक को सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षणालयों में प्रवेश करने के सम्बन्ध में कोई भेद नहीं बरता जायेगा। बहुत से प्रान्तों में, जैसे संयुक्त-प्रान्त ने यह प्रस्ताव पास कर लिया है कि कोई भी शिक्षण संस्था किसी भी जाति के व्यक्ति को दाखिल करने से केवल इस आधार पर मना नहीं कर सकती कि वे किसी विशेष जाति के हैं चाहे उस संस्था का संचालन कोई एक ही दानी कर रहा हो, जिसने यह विशेषरूप से निश्चय कर दिया हो कि वह संस्था उसकी विशेष जाति के सदस्यों को ही दाखिल करेगी। यदि उस संस्था को सरकारी सहायता मिलती है तो उसे अन्य जातियों के सदस्यों को दाखिल करना पड़ेगा। प्राचीन काल में एंग्लो इण्डियन स्कूलों में यह निर्धारित किया गया था कि यद्यपि ये स्कूल विशिष्टतया एंग्लो इण्डियनों के लिये हैं, 10 प्रतिशत जगहें भारतवासियों को दी जाएंगी। इस सभा द्वारा स्वीकृत अन्तिम रिपोर्ट में वह संख्या 40 प्रतिशत कर दी गई है। श्रीमान् जी, मैं निवेदन करती हूं कि बिना इस संशोधन के यदि इस वाक्य-खंड को मौलिक अधिकारों में रखा जाता है तो यह एक कदम पीछे हटना होगा और बहुत से प्रान्तों को जो आगे बढ़ चुके हैं अपने कदम पीछे हटाने पड़ेंगे। हमारे यहां ऐसी अनेकों संस्थायें हैं जिनका अनेकों परोपकारी व्यक्तियों द्वारा संचालन

किया जाता है, जिन्होंने एक बड़ी धन-राशि इनके चलाने के लिये नियत कर दी है। इस परोपकार की वृत्ति का स्वागत करते हुये जबकि एक सिद्धांत निर्धारित किया जाता है कि यदि किसी संस्था को सरकारी सहायता मिलती है, तो वह अन्य जाति के सदस्यों के दाखिले में न तो भेद रख सकती है और न मना कर सकती है, तो इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिये। श्रीमान् जी, हम जानते हैं कि बहुत-से प्रान्तों की प्रान्तीय भावनायें हैं। यदि इस व्यवस्था को मौलिक अधिकार के रूप में रखा जाता है तो मैं निवेदन करती हूं कि वह बड़ा घातक होगा। माननीय प्रस्तावक महोदय ने हमें यह नहीं बताया कि इस वाक्य-खण्ड में से सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं को खासकर हटाने का क्या कारण है। यदि उन्होंने यह समझा दिया होता तो सम्भव है सभा को विश्वास हो जाता। मैं आशा करती हूं कि समस्त शिक्षा-शास्त्री तथा इस सभा के अन्य सदस्य मेरे संशोधन का समर्थन करेंगे।

***श्री के.एम. मुंशी:** श्रीमान् जी, इस वाक्यखंड 18(2) का क्षेत्र यहीं तक सीमित है कि जहां सरकार की निजी शिक्षण संस्था है, किसी अल्पसंख्यक के साथ भेद नहीं बरता जायेगा। यह किसी सीमा तक इस सिद्धान्त को भी स्वीकार करता है कि राज्य किसी ऐसी संस्था को नहीं अपना सकता जिसमें अल्पसंख्यक का बहिष्कार किया जाता है। वास्तव में किसी सीमा तक इसमें वह विरोधी प्रस्ताव निहित है जिस पर वाक्य-खण्ड 16 में वाद-विवाद हुआ था, अर्थात् कोई अल्पसंख्यक राज्य द्वारा संचालित किसी स्कूल से बहिष्कृत नहीं किया जायेगा। ऐसा होने से उस आशय की पूर्ति हो जाती है जिस पर सदस्यों ने कुछ मिनट पूर्व वाद-विवाद किया था। यह एक अन्तिम सदूरवर्ती सीमा है जहां तक कि मेरे विचार से एक मौलिक अधिकार लागू हो सकता है।

पोकर साहब के संशोधन से तो मैं समझता हूं कि इस मौलिक अधिकार के मूल विषय तथा मूल अर्थ का ही पूर्णतया लोप हो जाता है। अल्पसंख्यक के इस अधिकार से यह आशय है कि बहुसंख्यकों द्वारा नियंत्रित व्यवस्थापिकाओं को अन्य जातियों का बहिष्कार कर अपनी जाति को श्रेय देने से रोका जाये। अत: प्रश्न यह है: क्या राज्य को अल्पसंख्यकों के स्कूल खोलने की स्वतंत्रता होनी चाहिये? फिर तो इसका मतलब यह होगा कि अल्पसंख्यक प्रजा का एक कृपा-प्राप्त प्रिय भाग है। यह मौलिक अधिकार के मूल आधार का नाश करता है। मैं निवेदन करता हूं कि इसको अस्वीकार करना चाहिये।

दूसरा संशोधन जो मेरे माननीय मित्र श्री मोहनलाल सक्सेना द्वारा पेश किया गया है, वह वास्तव में इस वाक्य-खंड में अप्रासंगिक है। चाहे वह कितना ही

[श्री के.एम. मुन्शी]

अच्छा हो, वह उस मौलिक अधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है जिस पर हम विचार कर रहे हैं। वह कहता है कि ''बशर्ते कि.....कोई सरकारी सहायता नहीं दी जायेगी जब तक कि....पाठ्यक्रम राज्य द्वारा उचित रूप से स्वीकृत नहीं किया जाये।'' यह वाक्य-खंड केवल सरकारी संस्थाओं के लिये है न कि उनके लिये जिनको सरकार से सहायता मिलती है। यह संशोधन सरकारी सहायता प्राप्त संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा के स्वरूप पर नियंत्रण रखने की मांग करता है। अत: यह सभा के समक्ष सामान्य प्रस्ताव के क्षेत्र से बाहर है। अपने मूल विषय में भी वह ''उचित रूप से राज्य द्वारा स्वीकृत'' कहता है। राज्य एक जाति के लिये एक प्रकार की धार्मिक शिक्षा स्वीकार करे तथा दूसरी जाति के लिये उसे स्वीकार न करे। यह उस भेद-भावना का समावेश करता है जो कि अन्य भेद-भावनाओं से अधिक कष्टप्रद होगी। मैं इसलिये निवेदन करता हूं कि सभा द्वारा यह स्वीकार न किया जाये।

इसके बाद श्रीमती बनर्जी का संशोधन है। वह स्वयं वाक्य-खंड से भी अधिक व्यापक है। जैसा कि मैंने बताया था कि वाक्य-खंड 16 तथा 18 वास्तव में अलग-अलग हैं। यह जातियों के सम्बन्ध में है। यह संशोधन, मौलिक अधिकार के माध्यम द्वारा न कि कानून-निर्माण द्वारा और न शासन-व्यवस्था द्वारा इस देश में हजारों संस्थाओं के बन्द करने की मांग करता है। जहां तक मेरे प्रान्त का सम्बन्ध है, मैं केवल एक बात कह सकता हूं। वहां अनेकों हिन्दू स्कूल हैं तथा अनेकों मुस्लिम स्कूल हैं। उनमें से अनेकों दान द्वारा चलाये जाते हैं जो या तो हिन्दू द्वारा या मुसलमान द्वारा दिया जाता है, फिर भी राज्य की शिक्षा सम्बन्धी नीति कांग्रेस के शासन-काल में यह रही कि जहां तक हो सके इन संस्थाओं में किसी छात्र के विरुद्ध शासन सम्बन्धी कार्यवाही करने में कोई भेद-भाव न बरता जाये। जब कभी कोई भेद बरता जाता है तो उस मामले की इन्स्पेक्टर जांच करता है, विशेषकर हरिजनों के सम्बन्ध में; यह बम्बई प्रान्त में सख्ती के साथ बरता जाता है। अब यदि आप इस प्रकार का मौलिक अधिकार रखते हैं तो एक स्कूल जिसमें 1000 छात्र हैं और जो 500 रुपये सरकारी सहायता पाता है, वह सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल हो जाता है। एक जाति का ट्रस्ट स्कूल का संचालन करता है और 50 हजार रुपया स्कूल पर खर्च करके 500 रुपया सहायता सरकार से पाता है। परन्तु यकायक सर्वोच्च न्यायालय यह निश्चय करता है कि यह बड़ा अधिकार इस स्कूल पर भी लागू होता है। यह जैसा कि मैंने कहा था कानून-निर्माण द्वारा उस सरकार की शासन-व्यवस्था के जरिये से प्रान्तों में अच्छे प्रकार से किया

जा सकता है जो इन भावनाओं पर विचार करती है और कभी-कभी कुछ शर्तो में गुंजायेश कर देती है। आप इसके लिये मौलिक राज-नियम किस प्रकार रख सकते हैं? आप जरा कलम फेरकर करोड़ों रुपये के ट्रस्ट को किसी अन्य प्रयोजन में कैसे लगा सकते हैं? ऐसा विचार प्रतीत होता है कि विधान में इन दो पंक्तियों के रखने से इस देश की प्रत्येक बात को जनता से परामर्श किये बिना ही बदलना होगा या व्यवस्थापिकाओं को इस पर विचार करने का अवसर दिये बिना उनको बदलना होगा। मैं निवेदन करता हूं कि वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये, यह बहुत अच्छा है कि इन कामों को जनता को शिक्षित बनाकर साधारण विधि द्वारा किया जाये न कि मौलिक अधिकारों में रखकर। यह वाक्य-खंड निषेधात्मक-सा है कि न संघ और न प्रादेशिक इकाई इस प्रकार की संस्था का संचालन कर सकती है जिनमें अल्पसंख्यकों का बहिष्कार किया जाता है। यदि हम यह प्राप्त कर लें तो हम बहुत उन्नति कर लेंगे और सभा को इतनी उन्नति से सन्तुष्ट रहना चाहिये।

***माननीय श्री हुसैन इमामः** सभा के समय में से मैं दो मिनट से अधिक नहीं लूंगा। मैं समझता हूं कि श्रीमती बनर्जी द्वारा प्रेषित संशोधन में कोई गलती नहीं है। वे न तो यह चाहती हैं कि इन दानाश्रित संस्थाओं को बन्द कर दिया जाये और न उनके कोष को किसी ऐसे काम में लगाया जाये जिसके प्रयोजन के लिये वह नहीं है। जो कुछ वे चाहती हैं वह यह है कि पार्थिव राज्य होने के कारण उसे बहिष्कार करने में साथ नहीं देना चाहिये। संस्था को यह अधिकार है कि यदि वह किसी विशेष वर्ग या किसी विशेष जाति को दाखिल नहीं करना चाहती है तो वह सरकारी सहायता लेना बन्द कर दे और इस प्रकार सरकारी सहायता लेना बन्द कर देने के पश्चात् किसी वर्ग के विद्यार्थियों का दाखिला बन्द करने की उन्हें स्वतंत्रता होगी। राज्य इस मामले में कुछ नहीं कह सकता है। यहां प्रमाणित शब्द नहीं रखा गया है। वाक्य-खंड 16 में हमने सर्वप्रिय शब्द ''प्रमाणित'' रखा था। इसीलिये सारी कठिनाई पैदा हुई और हमें उसे एक छोटी समिति के पास भेजना पड़ा। इस वाक्य-खण्ड में स्थिति बहुत स्पष्ट है। श्री मुंशी ने एक चतुर वकील के समान इस पर परदा डालने का प्रयत्न किया। जो संस्था अपने कोष से 40 हजार रुपया खर्च करती है उसे यह अधिकार है कि वह राज्य से 500 रुपया सहायता के रूप में न ले। परन्तु राज्य को यह घोषणा करने का अधिकार होगा कि राज्य की नीति के रूप में बहिष्कार को स्वीकार नहीं किया जाये और यह समान रूप से बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक संस्थाओं पर

[माननीय श्री हुसैन इमाम]

लागू होगा। सरकारी सहायता पाने वाली किसी संस्था को अपना द्वार भारत के किसी अन्य वर्ग के व्यक्तियों के लिये केवल इसलिये बन्द नहीं करना चाहिये कि ऐसी शर्त शुरू में उसके दानदाता ने चाही थी। उनको सरकारी सहायता बन्द करने का अधिकार है और वे किसी प्रकार के प्रतिबन्ध लगा सकते हैं जिनको वे चाहें।

***श्री एम.एस. अणेः** श्रीमान् जी, मैं केवल स्पष्टीकरण के लिए यह निवेदन कर रहा हूं। परामर्शदातृ समिति ने हमसे यह सिफारिश की है कि इस वाक्य-खंड को अर्थात् ''न उनको कोई धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी'' निकाल दिया जाये और केवल शेष भाग पर सभा का मत लिया जाये, लेकिन वे सिफारिशें इस परिस्थिति में की गई थी कि वाक्य-खंड 16 सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जायेगा। यह शर्त थी। परन्तु हमने क्या किया? वाक्य-खंड 16 को किसी कमेटी के विचारार्थ सुपुर्द किया है। इन परिस्थितियों में पूर्ण वाक्य-खंड को मय इस अंतिम वाक्य-खंड के जो कि हटाया जाने को था, सभा में मत के लिए रखा जायेगा। क्या समस्त वाक्य-खंड पर मत लिया जाये या केवल प्रथम भाग पर?

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि प्रस्ताव यह है कि अंतिम वाक्य-खंड को निकाल दिया जाये।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरूः** अध्यक्ष, श्रीमती बनर्जी द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं। मैंने बड़े ध्यान के साथ श्री मुंशी का व्याख्यान सुना। उनका यह विचार है कि यदि हमने इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया कि राज्य द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं को सब सम्प्रदायों के लड़कों को दाखिल करना पड़ेगा तो उससे बहुत लाभ होगा और कहा कि हम इस विषय को अन्य विषयों से नहीं मिलायें, चाहे वे कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न हों। मैं उनके विचारों की प्रशंसा करता हूं। फिर भी मैं यह समझता हूं कि देश में एकता की भावना उत्पन्न करने से सम्बंधित स्वीकृत व्यवस्थाओं को जो महत्व दिया गया है, उस पर विचार करते हुए यह वांछनीय है कि किसी लड़के को किसी भी स्कूल में दाखिल होने की स्वतंत्रता हो, चाहे वह सरकारी हो या सरकारी सहायता पाता हो। धर्म के कारण किसी छात्र को किसी स्कूल में दाखिल होने से न रोका जाये। श्रीमान् जी, इसका आशय यह नहीं है कि किसी स्कूल के हैडमास्टर को किसी विशेष सम्प्रदाय के लड़कों की एक विशिष्ट संख्या को दाखिल करना ही पड़ेगा।

उदाहरण के लिए किसी इस्लामिया स्कूल को लीजिये। यदि 200 हिंदू लड़के उस स्कूल में दाखिल होना चाहते हैं तो यह जरूरी नहीं कि हैडमास्टर उन सबों को दाखिल कर ले। परन्तु लड़को को केवल इस आधार पर दाखिल होने से नहीं रोका जायेगा कि वे हिन्दू हैं। हैडमास्टर यह निर्णय करने के लिये कि कौन-कौन से लड़कों को दाखिल किया जाये, किसी सिद्धांत को निर्धारित करेगा। यह एक सामान्य अनुभव है कि प्रत्येक स्कूल में दाखिल होने वालों की संख्या उस स्कूल में खाली जगह से बहुत अधिक होती है। कुछ छात्रों को निकालने (दाखिला न देने) के लिये हैडमास्टर एक ऐसे सिद्धांत का निर्णय करता है जो पार्थिव है और शिक्षा से सम्बन्धित है। यदि श्रीमती बनर्जी का संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता है तो मुस्लिम हाईस्कूल या हिंदू हाईस्कूल के हैडमास्टर को यह पूर्ण स्वतंत्रता होगी कि वह हिन्दू या मुसलमान लड़कों के, जैसी सूरत भी हो, दाखिले को रोक दे क्योंकि वे हैडमास्टर द्वारा निर्धारित जांच के योग्य नहीं है। मेरे विचार से यह यथेष्ट गारंटी है कि हैडमास्टर इस स्थिति में होगा कि वह इस सिद्धांत का पालन कर रहा है कि सब सरकारी या सरकारी सहायता पाने वाले स्कूलों में सब सम्प्रदायों के लड़कों को दाखिल होने का अधिकार है और वह उसके ऊपर कोई ऐसा भार नहीं डालेगा जिसे वह बरदाश्त न कर सके।

श्रीमान जी, देश में एकता की भावना उत्पन्न करने के लिए हमने पृथक निर्वाचन बन्द करने का निश्चय किया है। हमने साम्प्रदायिक निर्वाचन को भी स्वीकार नहीं किया है जैसा कि सरदार पटेल ने उस दिन ठीक-ठीक कहा था कि उसके स्वीकार करने का मतलब यह होगा कि जिस खतरनाक साम्प्रदायिक निर्वाचन के सिद्धांत को हम प्रत्यक्ष रूप से अस्वीकार कर चुके हैं, उसे अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार कर रहे हैं। राष्ट्रीयता के भावों को उन्नत करने पर जब हम इतना महत्व देते हैं तो क्या यह वांछनीय नहीं है, क्या यह आवश्यक नहीं है कि हमारी शिक्षण संस्थायें, जो सरकारी हैं अथवा सरकारी सहायता प्राप्त हैं, ऐसी न हों कि जिनमें केवल किसी विशेष धर्म व जाति के लड़के ही हों? यदि यह वांछनीय है कि युवाओं में एकता का भाव उत्पन्न किया जाये तो क्या यह और भी अधिक वांछनीय नहीं है कि छोटे-छोटे बालकों के लिए किसी ऐसे सिद्धांत को स्वीकार न किया जाये जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रीय विचार या भावना में असमानता उत्पन्न करें?

श्रीमान जी, चूंकि शिक्षा पर ही प्रत्येक राज्य का भावी कल्याण निर्भर है, इसलिये मेरे विचार से यह बड़ा ही महत्वपूर्ण है कि आज हम दृढ़ता के साथ यह सिद्धांत निर्धारित करें कि चाहे गैर सरकारी ही स्कूल हो यदि उसे सरकारी

[माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू]

सहायता मिलती है तो उसमें दाखिल होने का सब सम्प्रदायों के बालकों को अधिकार है। यह सिद्धांत उन निर्णयों के अनुसार होगा जो कि अन्य विषयों पर हमने तय किये हैं। इसकी अस्वीकृति एकता की आवश्यकता के लिये सामान्य भावना के विरोध में होगी जिसकी हमने अनेकों बार जोर देकर सभा में व्याख्या की है।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** सभा के अधैर्य को बढ़ाने के लिये मैं उत्तर देने में अधिक समय नहीं लूंगा। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि सरकारी स्कूलों में दाखिले के विषय में अल्पसंख्यकों के विरुद्ध यह एक सादा अभेदमूलक वाक्य-खंड है। प्रश्न केवल यह है कि इस सिद्धांत को यहां तक लागू किया जाये कि इसमें सब स्कूल जो कि थोड़ी-बहुत सरकारी सहायता पाते हैं आयें या नहीं। इस प्रश्न पर समिति ने विचार किया और इस निश्चय पर पहुंची कि यदि अभी हम इसी सिद्धांत को मान लें तो यह काफी होगा और शेष व्यवस्थापिका द्वारा ग्रहण करने के लिये, जहां कहीं भी उपयुक्त परिस्थितियां हों, छोड़ा जा सकता है। मौलिक अधिकारों से इसे हटाना एक बड़ा जबरदस्त कदम होगा। इसलिये अभी मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

***श्री मोहनलाल सक्सेनाः** इससे पूर्व कि आप संशोधन पर मत लें, मैं अपने संशोधन के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। श्री मुंशी ने कहा है कि मेरा संशोधन अप्रासंगिक है। मैं निवेदन करूंगा कि वाक्यखंड 16 पर विचार करने के लिये नियुक्त की गई समिति के पास इसे भेज दिया जाये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** यह भी अप्रासंगिक है।

***अध्यक्षः** सर्वप्रथम मैं श्री अहमद इब्राहीम साहब के संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव है कि:

''वाक्य-खंड 18(2) में 'शिक्षणालय' शब्दों के पश्चात् निम्न बढ़ा दिया जाये:

'बशर्ते कि यह वाक्य-खंड उन सरकारी शिक्षण संस्थाओं में लागू नहीं होगा जो खासकर जनता के किसी विशेष सम्प्रदाय या वर्ग के लाभ के लिये संचालित किये जाते हैं।'''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी के संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव है कि:

''‘सरकारी' शब्द के पश्चात् 'तथा सरकारी सहायता प्राप्त' जोड़ दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री मोहनलाल सक्सेना के संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव है कि:

निम्न व्यवस्था वाक्य-खंड 18(2) में बढ़ा दी जाये:

''बशर्ते कि धार्मिक शिक्षा देने वाली संस्थाओं को कोई सरकारी सहायता नहीं दी जायेगी जब तक कि इन संस्थाओं का पाठ्य-क्रम राज्य द्वारा उचित रूप से स्वीकृत नहीं किया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं मूल वाक्य-खंड पर मत लूंगा।

प्रस्ताव है कि:

''18(2) धर्म, जाति या भाषा में से किसी आधार पर आश्रित किसी अल्पसंख्यक को सरकारी शिक्षणालयों में प्रवेश करने के विरुद्ध कोई भेद नहीं बरता जायेगा।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** रिपोर्ट का यह भाग अब समाप्त हुआ। परिशिष्ट को बाद में लिया जायेगा। विदा होने के पूर्व मुझे कुछ घोषणा करनी है।

***अध्यक्षः** सदस्यों को याद होगा कि यह सुझाव रखा गया था कि वाक्य-खंड 16 को एक उप-समिति के हवाले किया जाये और वह उप-समिति सभा को नहीं वरन् मस्विदा बनाने वाली समिति को रिपोर्ट करे जो उस रिपोर्ट पर विचार करेगी। मैं उन सज्जनों के नाम पेश कर रहा हूं जो उस विशेष वाक्य-खंड में रुचि रखते हैं।

(1) डॉ. मोहनसिंह मेहता।

(2) पं. हृदयनाथ कुंजरू।

[अध्यक्ष]

(3) श्री हुसैन इमाम।

(4) श्री राधाकृष्णन।

(5) श्रीमती रेणुका रे।

(6) श्री के.एम. मुंशी।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** क्या हम दूसरे भाग को लें?

***अध्यक्षः** अभी नहीं। सभा को याद होगा कि कल हमने हाउस कमेटी में रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये निर्वाचन किया था। केवल दो व्यक्ति नामजद किये गये और दो ही रिक्त स्थान थे, इसलिये उन दोनों को स्वीकार किया गया। उन सज्जनों को निर्वाचित घोषित किया गया। वे श्रीयुत अमियकुमार दास तथा श्री वी. सी. केशवराव हैं। अब सभा को स्थगित होना है। एक नियम के अंतर्गत अध्यक्ष को केवल तीन दिवस के लिये सभा स्थगित करने का अधिकार है। यह स्थगन बहुत अधिक काल के लिये है और सभा को यह अधिकार अध्यक्ष को देना है कि वे जब ठीक समझें सभा बुला लें, क्योंकि हम आशा करते हैं कि मस्विदा बनाने वाली समिति रिपोर्ट तैयार कर लेगी और परिषद् की बैठक बुलाने से काफी पहले मैं उसे सदस्यों में घुमाना चाहता हूं जिससे कि वे रिर्पार्ट का अध्ययन तथा उस पर विचार कर लें और फिर परिषद् की बैठक में सम्मिलित हों। आज इस बात की आशा करना संभव नहीं है कि मस्विदा-समिति की रिपोर्ट कब तक प्राप्त हो सकेगी और इसीलिये आज बैठक की तिथि का अनुमान तक नहीं किया जा सकता है। मैं इसलिये सभा से यह निवेदन करूंगा कि रिपोर्ट के तैयार हो जाने पर हमें उपयुक्त तिथि नियत करने का अधिकार दें।

परिषद् सहमत हुई।

***श्री आर.के. सिधवाः** क्या आप हमें कुछ अंदाज बता सकते हैं कि यह कब तक होगा?

***अध्यक्षः** मैं किसी बात के लिये इस दशा में वचनबद्ध होना नहीं चाहता हूं।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** क्या मैं यह जान सकता हूं कि इस काल में व्यवस्थापिका की बैठक होगी क्या?

***अध्यक्षः** यह (प्रश्न) मेरे लिये नहीं है वरन् सरकार के लिये है।

***श्री मोहनलाल सक्सेनाः** श्रीमान्जी मैं प्रस्ताव रखता हूं कि जब तक अध्यक्ष द्वारा तारीख नियत न की जाये, यह परिषद् स्थगित की जाती है।

***मि. तजम्मुल हुसैनः** मैं इसका समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री मोहनलाल सक्सेना कहते हैं कि अध्यक्ष द्वारा नियत की जाने वाली तारीख तक सभा स्थगित रहे। मैं मान लेता हूं कि सभा की यही इच्छा है।

***माननीय सदस्यगणः** जी हां, जी हां।

***अध्यक्षः** इस प्रस्ताव के अनुसार सभा उस तारीख तक स्थगित की जाती है जिसको मैं नियत करूंगा। अध्यक्ष द्वारा नियत की जाने वाली तारीख तक सभा स्थगित की गई।

भारतीय विधान-परिषद्

कौंसिल हाउस,
नई दिल्ली, ता. 25 अगस्त सन् 1947 ई.

प्रेषकः

माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल, सभापति

अल्पसंख्यकों, मौलिक अधिकारों इत्यादि की परामर्शदातृ समिति।

सेवा में:

अध्यक्ष महोदय,
भारतीय विधान-परिषद्
श्रीमान्, जी,

मेरे पत्र संख्या वि. प. ।24। कमे. ।47 तारीख 23 अप्रैल सन् 1947 ई. के सिलसिले में समिति की ओर से मौलिक अधिकारों पर पूरक रिपोर्ट पेश करने का मुझे गौरव प्रदान किया गया है।

2-हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि न्यायालय जाने वाले मौलिक अधिकारों के साथ-साथ विधान में सरकारी नीति की कुछ हिदायतें होनी चाहियें जो यद्यपि किसी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने योग्य तो नहीं हैं परन्तु देश की शासन व्यवस्था में उनको मौलिक समझना चाहिये। जिन व्यवस्थाओं की हम सिफारिश करते हैं वे परिशिष्ट (क) में हैं।

3-हमारी पहली रिपोर्ट के पैरा 8 में हमने मौलिक-अधिकार-उप-समिति की सिफारिशों का उल्लेख किया है कि न्यायालय में सरकार के विरुद्ध शिकायत दूर कराने के किसी नागरिक के अधिकारों को अनुचित प्रतिबन्धों द्वारा न रोका जाये। सावधानी से विचार करने के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुंचे कि इस सिलसिले में अप्रैल व मई के अधिवेशन में परिषद् द्वारा स्वीकृत 22 वाक्य-खंड में दी हुई व्यवस्थाओं के अतिरिक्त विधान में और किसी अधिकार की व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है।

4-हमारी पहली रिपोर्ट के वाक्य-खंड 16, 17 तथा 18(2) को विधान-परिषद ने हमें फिर सुपुर्द किया। हमने वाक्य-खंडों की फिर जांच की और हमारी सिफारिशें निम्न हैं:

वाक्य-खंड 16: ''सरकारी कोष द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी स्कूल में जाने वाले किसी व्यक्ति को उस स्कूल में दी जाने वाली किसी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने या उस स्कूल से सम्बद्ध अन्य स्थान में की जाने वाली किसी धार्मिक पूजा में उपस्थित होने के लिये विवश नहीं किया जायेगा।''

हम सिफारिश करते हैं कि वर्तमान रूप में इस वाक्य-खंड को परिषद् द्वारा स्वीकार किया जाये।

वाक्य-खंड 17: ''दबाव या अनुचित प्रभाव द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन करना कानून द्वारा प्रमाणित नहीं किया जायेगा।''

आगे और विचार करने पर हमें यह प्रतीत हुआ कि यह वाक्य-खंड किसी कदर उस प्रत्यक्ष सिद्धांत की व्याख्या करता है, जिसका विधान में रखना अनावश्यक है और हम सिफारिश करते हैं कि इसे पूरा का पूरा निकाल दिया जाये।

वाक्य-खंड 18 (2): ''धर्म, जाति या भाषा में से किसी आधार पर आश्रित किसी अल्पसंख्यक को सरकारी शिक्षणालयों में दाखिल होने में कोई भेद नहीं बरता जायेगा और न उनको किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी।''

हम सिफारिश करते हैं कि वाक्य-खंड का पिछला भाग अर्थात् ''और न उनको किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जायेगी'' को ऊपर दिये हुए

वाक्य-खंड 16 पर विचार करते हुए, जिसके रखे जाने की हमने सिफारिश की है, निकाल दिया जाये। हम सिफारिश करते हैं कि शेष् भाग को परिषद् स्वीकार करे।

हमने इस बात की जांच की कि आया इस वाक्य-खंड के क्षेत्र को यहां तक विस्तृत किया जाये कि इसमें सरकारी सहायता प्राप्त संस्थायें भी आ जाएं और इस परिणाम पर पहुंचे कि वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रकार की सिफारिश करना हमारे लिये न्यायपूर्ण नहीं होगा।

5-मौलिक अधिकार उप-समिति ने अपनी रिपोर्ट में देवनागरी या फारसी लिपि में लिखी गई हिदुस्तानी को भारतीय संघ की राष्ट्र-भाषा स्वीकार करने की हमसे सिफारिश की है लेकिन हमने यह ठीक समझा कि अप्रैल 1947 में इस विषय पर विचार करना स्थगित किया जाये। इस बात पर विचार करते हुए कि विधान-परिषद्, संघ-विधान-समिति की रिपोर्ट की कुछ सिफारिशों द्वारा इस विषय पर विचार कर रही है, हमने मौलिक अधिकारों की सूची में इस विषय पर किसी व्यवस्था को शामिल करना अनावश्यक समझा।

6-हमने उन अनेकों संशोधनों की भी जांच की, जो नई व्यवस्थाओं के रूप में थे और जिनकी सूचना अनेकों सदस्यों ने परिषद् के अप्रैल-मई अधिवेशन में दे दी थी। हम उनमें से किसी को भी स्वीकार नहीं कर सके। उनमें से कुछ तो उन विषयों से सम्बंधित थे जिनकी व्यवस्था परिषद् द्वारा स्वीकृत वाक्यखंडों में या इस रिपोर्ट में सिफारिश किये गये नये वाक्यखंडों में कर दी गई है और शेष हमें अनावश्यक या अनुचित जान पड़े।

भवदीय
वल्लभभाई पटेल
सभापति

परिशिष्ट 'क'
शासन-व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त
भूमिका

1-इस भाग में दिये हुये नीति के सिद्धान्त राज्य के पथ-प्रदर्शन के लिये हैं। यद्यपि ये सिद्धान्त किसी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किये जाने वाले नहीं हैं, फिर भी वे देश की शासन-व्यवस्था में मौलिक हैं और कानून बनाने में इनका प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।

सिद्धान्त

2-एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को, जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय के आधार पर राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं का निर्माण हो, यथाशक्ति समुचित रूप में प्राप्त कर तथा उसकी रक्षा कर राज्य समस्त जनता के हित की उन्नति के लिये प्रयत्न करेगा।

3-राज्य विशेषकर निम्न बातों को प्राप्त करने के लिये अपनी नीति का निर्धारण करेगा-

(1) नागरिकों को, नर तथा नारियों को समान रूप से जीवनयापन के पर्याप्त साधनों को प्राप्त करने का अधिकार है।

(2) सम्प्रदाय के भौतिक साधनों के स्वामित्व तथा नियंत्रण का इस प्रकार वितरण किया जाये कि जिससे वह सर्वसाधारण की भलाई में सहायक हो सके।

(3) उस स्वतंत्र स्पर्धा का प्रयोग नहीं करने दिया जायेगा जिसका फल यह हो कि आवश्यक सामग्रियों के स्वामित्व तथा नियंत्रण का केन्द्रीकरण चन्द व्यक्तियों में हो और सर्वसाधारण के लिये घातक हो।

(4) दोनों (स्त्री तथा पुरुषों) के लिये समकार्य के लिये समवेतन होगा।

(5) श्रमिकों के, स्त्री तथा पुरुष की शक्ति तथा स्वास्थ्य का और बच्चों की कोमल वय का दुरुपयोग नहीं किया जायेगा और आर्थिक

आवश्यकताओं के कारण नागरिकों को किसी ऐसे पेशे में दाखिल नहीं होने दिया जायेगा जो उनकी आयु तथा शक्ति के लिये उपयुक्त न हो।

(6) बचपन तथा यौवन की शौषण से तथा नैतिक और भौतिक आत्मसमर्पण से रक्षा की जायेगी।

4–अपनी आर्थिक क्षमता तथा प्रगति की सीमा के अन्तर्गत राज्य–कार्य करने, शिक्षा देने तथा बेकारी की सूरत में प्रजा की सहायता करने, वृद्धावस्था, रोग, अशक्तता तथा अनुचित मांग के अन्य मामलों के अधिकारों की समुचित व्यवस्था करेगा।

5–श्रमिकों के लिये प्रसूत सम्बन्धी सुविधा देने तथा काम करने की ठीक तथा मानवोचित परिस्थितियां उत्पन्न कराने की राज्य व्यवस्था करेगा।

6–उपयुक्त कानून–निर्माण, आर्थिक संगठन अथवा अन्य किसी प्रकार से सब श्रमिकों को, चाहे वे औद्योगिक हों अथवा अन्य प्रकार के हों, श्रम (काम) गुजर योग्य वेतन (living wage) जीवन के उच्च मान का पूर्ण विश्वास दिलाने वाली तथा विश्राम–काल के पूर्ण उपभोग की श्रम सम्बन्धी शर्तें और सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसरों को प्राप्त कराने का राज्य प्रयत्न करेगा।

7–नागरिकों के लिये समान दीवानी संहिता (Civil Code) के उपयोग में लाने का राज्य प्रबन्ध करेगा।

8–प्रत्येक नागरिक को बिना फीस के प्राइमरी शिक्षा पाने का अधिकार है और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि इस विधान के लागू होने से दस वर्ष तक के काल में सब बालकों को जब तक कि वे 14 वर्ष की आयु समाप्त न करें, बिना फीस के अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा देने की व्यवस्था करे।

9–प्रजा के पिछड़े हुये दुर्बल भाग के, विशेषकर परिगणित जातियों तथा आदिवासी, कबायलियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हित–साधनों की राज्य विशेष सावधानी के साथ तरक्की करेगा और उनकी सामाजिक अन्याय तथा समस्त प्रकार के शोषणों से रक्षा करेगा।

10–अपनी प्रजा के जीवन–मान के तथा पालन–पोषण के स्तर को उच्च करने तथा स्वास्थ्य–सुधार को राज्य अपना प्रमुख कर्तव्य समझेगा।

11-संघ के कानून द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व की प्रत्येक कलात्मक या ऐतिहासिक यादगार अथवा स्थान अथवा वस्तु की लूट, विध्वंस, उसको हटाने, बेचने या उसके निर्यात करने से, जैसी भी सूरत हो, रक्षा करने और संघ के कानून के अनुसार ऐसी समस्त यादगारों, अथवा स्थानों अथवा वस्तुओं को कायम तथा सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व राज्य पर होगा।

12-राष्ट्रों में परस्पर प्रत्यक्ष, न्यायपूर्ण तथा आदरणीय सम्बन्धों के आदेशों द्वारा, सरकारों में परस्पर कार्य-पद्धति के वास्तविक नियमस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान की दृढ़ स्थापना द्वारा तथा संगठित लोगों के परस्पर व्यवहार में संधि की शर्तों के न्याय तथा उचित सम्मान सहित निर्वाह द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा में तरक्की करेगा।